उदारीकरण के इस दौर में
सरकारी उपेक्षा के बीच
बुन्देलखण्ड के क्रूर अनुभवों पर
आधारित आम-अवाम की व्यथा-कथा...

भूख से मरता जहान!
कर्ज में तड़पता किसान!!

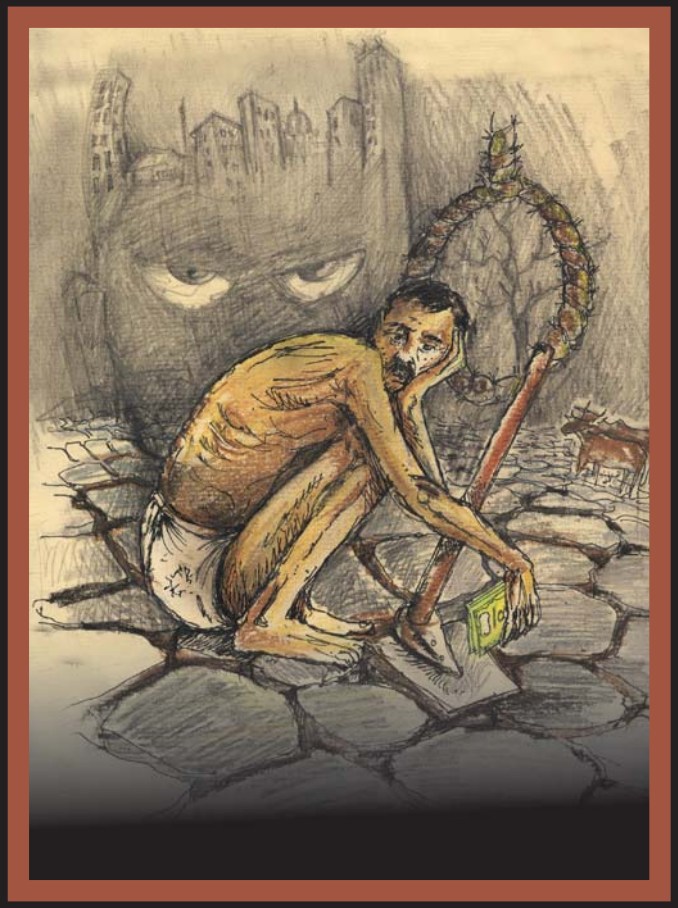

अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान, चित्रकूट

भूख से मरता जहान!
कर्ज में तड़पता किसान!!

प्रकाशक :

अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान

भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, पोस्ट–सीतापुर,
चित्रकूट–210204 (उ.प्र.) फोन : 05198-224332
E-mail : info@absss.org.in, वेब : www.absss.org.in

पहरूआ पहल कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रकाशित

इस पुस्तक का उपयोग उचित सन्दर्भ देते हुए किया जा सकता है।

प्रकाशन वर्ष : सितम्बर, 2006
प्रकाशन संख्या : 500
मुद्रक : डबल एस प्रोडक्शन, लखनऊ।

अनुक्रमणिका

- संरक्षक-संस्थापक की कलम से..... 1
- अपनी बात 3
- लेखक की बात 7
- भूख 13
- कर्ज का मकड़जाल 72
- सूखा 104
- कृषि 125

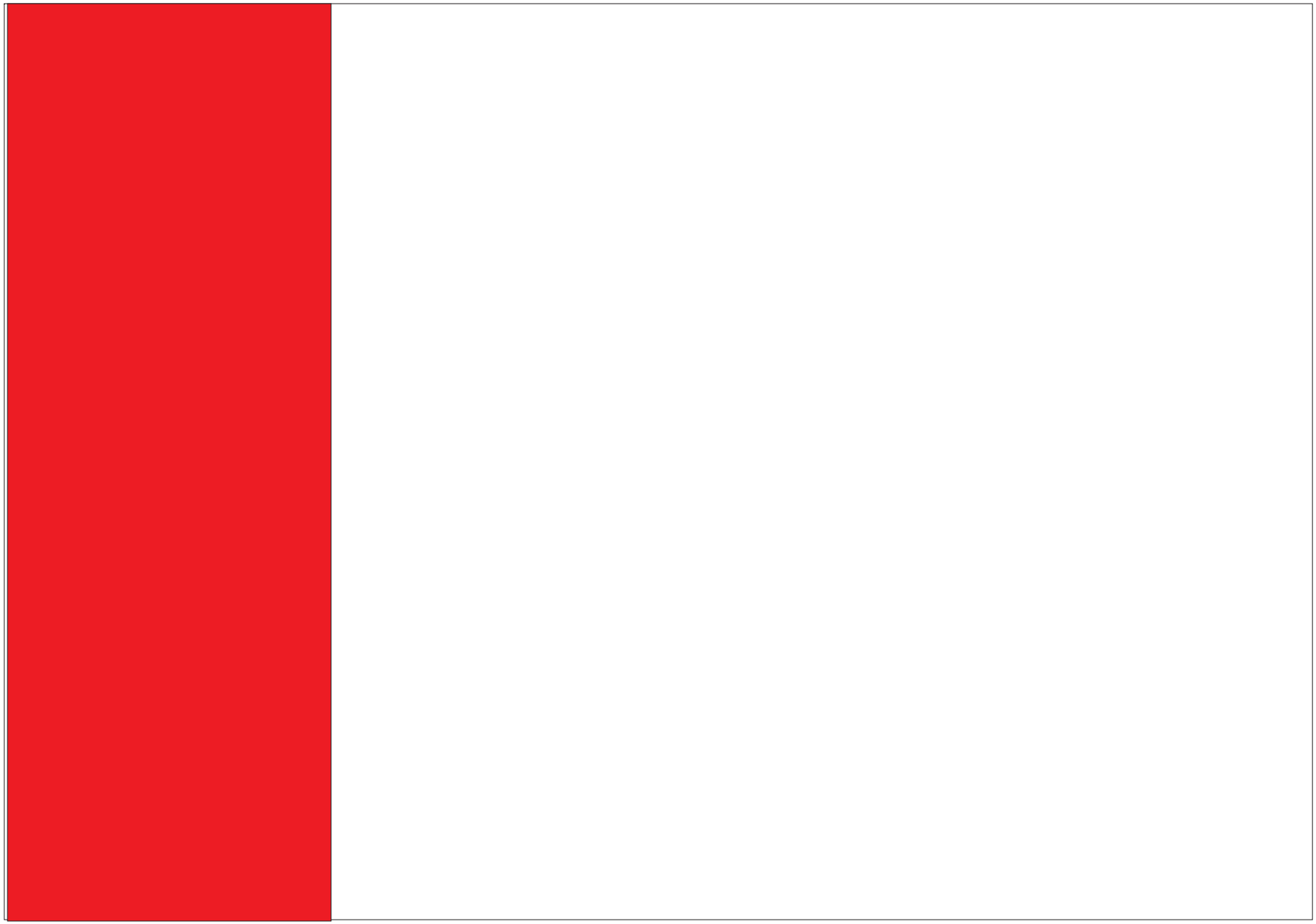

संरक्षक - संस्थापक की कलम से...

आज प्रकृति (भूख) विकृति की शिकार है। सुसंस्कृति का वाहक भारत आज अपनी सांस्कृतिक पूंजी की रक्षा नहीं कर पा रहा है। विकृति के पोषक तथा वाहक मरघट से संसद तक अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं। इन नये लुटेरों से देश को बचाना बहुत कठिन कार्य बनता जा रहा है।

असीमित संसाधनों पर सीमित लोगों ने अवैध, अनैतिक अधिकार जमा रखा है। याद रहे! सच यह है कि संसाधन असीमित हैं तथा आवश्यकताएं सीमित हैं। इस सच के बाद भी लोग भूख, अभाव, शोक, संताप से दम तोड़ रहे हैं। सत्ता पुत्र स्व-प्रमाद के कारण इस स्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। ब्रिटिश काल की अपसंस्कृति का दास जिलाधिकारी नाम का अधिकार सम्पन्न काल मानव? दानव? सत्ताधीशों का अन्तिम सत्य बन बैठा है? लोकमत मारा-मारा भटक रहा है। यदि जिलाधिकारी ने कह दिया, लिख दिया कि भूख से कोई नहीं मर रहा, कहीं कोई अकाल, दुकाल, सूखा नहीं है, तो फिर मुख्यमंत्री का यह अन्तिम सत्य होता है?

सूबे का राजा फिर वही बोलता है जो मंत्र उसे जनता के सेवक किन्तु जिले के शेर खाल ओढ़े सिंयार मालिक से मिला है। यह कैसा दुर्भाग्य है? जिनके मत के सहारे सत्ता पुत्रों को राज सुख भोगने का अवसर मिलता है, उनके ही जीवन सच को मदमस्त होकर उनके द्वारा ठुकराया जाता है। दुर्योधन, रावण, कंस जैसे सत्ताधीशों ने लोकहितों की अवहेलना की थी, उस काल के दुष्परिणाम कौन नहीं जानता? क्या आज वैसा ही दृश्य नहीं है? बुन्देलखण्ड में पाँच वर्षो से लगातार अवर्षण का संकट किसान झेल रहा है। खेत सूखे पड़ें हैं। गरीबों का गाँवों से पलायन हो चुका हैं। तालाबों में पानी नहीं है। ट्रैक्टरों के मालिक किसानों की जमीने बिक रही हैं, नीलाम हो रही हैं, लोग आत्म हत्याएं कर रहे हैं,

भूख, भूख, भूख .....?
भूख प्रकृति है।
छीनकर खाना विकृति है।
मिल बांटकर खाना संस्कृति है।

भूख से मौतों की घटनाएं अनवरत जारी है। इसके विपरीत सत्ता कह रही है, सब कुछ ठीक हैं, उसे चारों ओर खुशहाली ही नज़र आ रही है। इस स्थिति का परिणाम क्या होगा? फटेगा जनाक्रोश जिसकी भयंकर बाढ़ में सब कुछ नष्ट हो सकता है।

इस पुस्तक में वर्णित सारी घटनाएं संकट के पूर्व की चेतावनी स्वरूप हैं। लेखक हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं कि उन्होंने कठोर श्रम करके तथ्यों को संकलित किया है। ये तथ्य समाज का दर्पण हैं, इसमें अपना चेहरा देख सकें, स्थिति को गुन जान सकें तथा कुछ परिवर्तन का मन बना सकें तो हमारा प्रयास सफल होगा। प्रयास के लिए पुनः बधाई।

(गोपाल भाई)

संरक्षक-संस्थापक
अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान
चित्रकूट (उ.प्र.)

अपनी बात

देश की 70 प्रतिशत जनता आजादी की अर्धशती बीत जाने के बाद भी बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। भूमंडलीकरण, नवउदारवाद और बाजारवाद के अपने हिन्दुस्तानी दलाल बुद्ध, महात्मा गाँधी, डा. भीमराव अम्बेडकर के साथ ही लोकतन्त्र, समानता, सामाजिक न्याय को छोड़ जिस पाशविक सम्पन्नता की होड़ में शामिल है, उसके कारण गरीबो की दुनियाँ में अंधेरा और गहरा गया है, जबकि ऊपर की अधिरचना समृद्ध-भव्य दिखायी दे रही हैं। विकास या विनाश की बहस का कारण भी यही है कि मुटठी भर लोगों के लिए ही लोकतन्त्र जन्नत साबित हुआ है, शेष साधारण लोगों के सपने मर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र दूसरा ''कालाहांडी'' तथा ''विदर्भ'' की राह पर है। 5 वर्षो से लगातार सूखे के कारण बुन्देलखण्ड का आमजन बदहाली और बेबसी का शिकार है। सम्पन्न एवं मध्यम वर्ग का किसान कर्ज, ट्रैक्टर की किश्त, नमक-रोटी न जुटा पाने के कारण आत्महत्या कर रहा है। इधर के समय में सैकड़ों उदाहरण सामने आये है। सम्पन्न एवं मध्यम वर्ग के किसानों की अगर यह हालत है, तो गरीब एवं भूमिहीन परिवारों के हालात क्या होगें, कल्पना की जा सकती है?

बुन्देलखण्ड में सार्वजनिक वितरण प्रणाली पूरी तरह ध्वस्त है। 10-10 वर्षो से अन्त्योदय, बीपीएल कार्ड धारको को राशन नहीं मिल रहा है। सम्पूर्ण राशन सामग्री कानपुर, वाराणसी आदि के आटा मिलों में समा रही है। बुन्देलखण्ड में 'भुखमरी' की घटनाएं अब आम हो चली है। गरीब एवं वंचित वर्ग के लगभग 40% लोगों का काम की तलाश में पलायन इसका प्रमाण है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कानून, 2005 अभी

शिशु अवस्था में है परन्तु अन्य सरकारी योजनाओं की तरह ही इसको भी देखा जा रहा हैं। यह योजना गरीबो का कितना हित साध पायेगी, सपना है?

बुन्देलखण्ड विगत **5** वर्षो से सूखा ग्रस्त है। बुन्देलखण्ड में वर्षा यद्यपि **800-1000** मि.मी. होती है परन्तु बुन्देलखण्ड की बनावट को ध्यान में रखना होगा। औसत वर्षा हो जाने पर सरकारें अपना इतिश्री समझ लेती है परन्तु एक ही समय में वर्षा हो जाने के कारण शेष समय सूखा रहता है। फलस्वरूप फसलें प्रभावित होती है। फसल उत्पादन, उत्पादकताह्रास, बीज तक वापस न हो पाने की किसको फिक्र है? ऊपर से कर्ज की वसूली सूली की तरह लटकती रहती है। सूखा के नाम पर ''राहत का झुनझुना'' भीख के रूप में मिलता है, परन्तु कितना? कही **4** रूपये तो कहीं **16** रूपये तो कहीं **25** रूपये का चेक..

बुन्देलखण्ड के सूखे को राहत की जरूरत नहीं है, जबकि बुन्देलखण्ड के सूखे को ''आपदा'' के रूप में लेना होगा। बुन्देलखण्ड में सूखे के समाधान हेतु निरन्तर जल, जंगल, जमीन जैसे क्षेत्रों में प्रयासों की आश्यकता है। बुन्देलखण्ड के सूखे को जब तक आपदा की तरह नहीं लिया जायेगा, ''आपदा प्रबन्धन नीति'' नही बनाई जायेगी, तब तक बुन्देलखण्ड का गरीब, किसान, दलित, आदिवासी भुखमरी का शिकार होता रहेगा। आत्महत्याओं का यदि ऐसा ही दौर चलेगा तो सभ्य समाज तथा सरकारो के लिए राष्ट्रीय कलंक की बात होगी।

बुन्देलखण्ड में इधर हो रही लगातार भूख से मौतों, आत्महत्याओं, अन्त्योदय, बीपीएल कार्ड न मिल पाने के कारण हताश, निराश, कुण्ठाग्रस्त लोगों द्वारा भी आत्महत्या तथा राशन प्रणाली के साथ-साथ अन्य सरकारी योजनाओं से आम जन की वंचना का सुनियोजित षड़यंत्र, धांधली, भ्रष्टाचार आदि पर अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान

की पहरूआ टीम सतत् नजर रखे हुए है। संस्थान अपने सक्रिय मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, संस्थाओं, जन संगठनों के साथ मिल कर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को जानने समझने का प्रयास कर रहा है। यह प्रकाशन प्रयास उसी दिशा में एक कदम है।

इस पुस्तक को तैयार करने में, सूचनाओं के एकत्रीकरण, भुक्तभोगी परिवारों के साथ साक्षात्कार, फैक्ट फाइन्डिग आदि में चिनगारी संगठन, पाठा कोल अधिकार मंच के सदस्यों तथा पहरूआ पहल टीम के साथ-साथ सहयोगी संस्थाओं से राजा भइया, दिनेश पाल सिंह, संजय सिंह, सुश्री माया साकेत, संतोष कोल, अभिषेक, आनंद, वासुदेव, विमल कुमार, अर्चन, सुश्री केशर, आबिद अली, भारती आदि के सक्रिय सहयोग हेतु संस्थान हार्दिक आभार प्रकट करता है।

बुन्देलखण्ड की स्थिति परिस्थति, समस्याएं आदि को शब्द देने हेतु लेखक श्री मनोरंजन सिंह जी का ह्रदय से आभार एवं साधुवाद। अपने व्यस्तम समय तथा परिवारिक जीवन से समय निकालकर बुन्देलखण्ड के संकट के साथ जुड़ना, शब्द देना मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं का आपने सशक्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। संस्थान वन्श की ओर से श्री सिंह को बधाई।

आदरणीय श्री गोपाल भाई जी का समय-समय पर संरक्षण एवं मार्ग दर्शन मिला उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता।

यह पुस्तक बुन्देलखण्ड की वर्तमान स्थिति परिस्थति, गहराते संकट, बदतर होते हालात, बदहाली बेबसी की ओर अजीविका के बढ़ते संकट की ओर मानवीय संवेदना, जीजीविषा एवं सरोकारों की ओर चेतना पैदा करने की एक पहल है।

इस पुस्तक में किसी की भावनाओं को आहत करने का भाव नहीं हैं बल्कि स्थिति बदतर हो, उसके पूर्व की चेतावनी है। समय रहते हालात सुधारने की दिशा में विनम्र पहल है। विश्वास है लोक हित को बचाने की दिशा में यह पुस्तक हम सबका आधार बनेगी।

अपने प्रकाशक श्री भानु भैया एवं चित्रकार राम बाबू जी का भी आभार, जिन्होंनें अथक परिश्रम करके हमारा उत्साह वर्धन किया तथा पुस्तक को इस रूप में, समय से लाने में सहयोग किया।

अन्त में, पुनः इस पुस्तक को तैयार करने में, अपना योगदान देने वाले सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोगियों, जनसंगठनों एवं संस्थाओ के प्रति आभार, कृतज्ञता।

सधन्यवाद !

भागवत प्रसाद
निदेशक
अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान (चित्रकूट)

लेखक की बात

देश के किसी कोने में जब भूख और कर्ज के कारण मौतें होती हैं, तो सबसे पहले शोक के शुभंकर के रूप में कालाहांडी और विदर्भ का जिक्र किया जाता है। बुंदेलखंड के प्ररिप्रेक्ष्य में भी अखबार और सरकार यही कर रहे हैं। जब भूख से कोई मरता है, तो लिखते हैं बुंदेलखंड में कालाहांडी जैसे हालात बन गए हैं। जब किसान कर्ज के कारण आत्महत्या करता है तो यही अखबार लिखते हैं कि यहां के किसानों की स्थिति विदर्भ जैसी हो गयी है। इनको कौन बताए कि मौजूदा बुंदेलखंड का सच इन दोनों से अलग और भयावह है, क्योंकि बुंदेलखंड में तो भूख और कर्ज दोनों की मार पड़ रही है। सामंती अवशेष दूसरे तरह की समस्या है, जो आज भी बंधुआ मजदूरी को अपराध नहीं मानता। आपदाग्रस्त इस इलाके में डकैतों का अलग राज चलता है। संविधान प्रदत्त कोई भी शासन या प्रशासन यहां गौरहाजिर दिखते हैं। नदियों-तालाबों की तलहटी साल में नौ महीने चटखी रहती है। यहां आने वाले फसलों की जन्म से पहले ही मौत तय है। यहां के किसान अब धीरे-धीरे फसलचक्र भी भूल रहे हैं। बुंदेलखंड में पानी के अकाल की सार्वजनिक स्थिति पैदा होने ही वाली है। यहां भू-जलस्तर काफी नीचे चला गया है और जमीन से पानी निकालना किसानों के लिए असंभव होता जा रहा है। अगर इसको कठोर शब्दों में कहा जाए तो बुंदेलखंड इन दिनों देश का सबसे अभागा क्षेत्र बन गया है। घनघोर गरीबी, प्रकृतिक आपदाएं इस इलाके के भाग्य पर पैबस्त हैं। राज्य सरकार केंद्र से बुंदेलखंड के लिए विदर्भ जैसे विशेष आर्थिक पैकेज की मांग कर रही है। केंद्र है कि सुन नहीं रहा है। लोग भूख से मर रहे हैं और किसान कर्ज के बोझ तले आत्महत्या कर रहे हैं। पिछले पांच वर्षों से लगातार पड़ रहे सूखे से स्थितियां और ही विकट होती जा रही हैं। कोई भी व्यक्ति

खेती में हाथ डालना नहीं चाह रहा है, दूसरा कोई काम नहीं है और लोग भारी संख्या में यहां से पलायन कर रहे हैं।

मुझे अपने गांव के प्राइमरी स्कूल के मास्टर साहब की बात आज भी याद है। वह कहते थे-भारत का किसान कर्ज में पैदा होता है, कर्ज में पलता-बढ़ता है और कर्ज में ही मर जाता है। दुर्भाग्य से मास्टर साहब अब हमारे बीच नहीं हैं, अन्यथा उनसे जरूर यह कहता कि आप अपनी आखिरी बात में कुछ तब्दीली कर लीजिए, अब कहिए कि 'आज का किसान कर्ज के कारण आत्महत्या कर लेता है।' वैश्वीकरण और उदारीकरण का बहुत मारक असर पड़ा है किसानों पर। उदारीकरण के प्रभाव में अपनाई गयी नयी आर्थिक नीति किसानों के बरखिलाफ है। खासतौर से 1992-93 के बाद हर वित्तमंत्री अपने सालाना बजट में किसानों को भीख (कर्ज) देने की घोषणा करता है। भीख के लिए शर्तें लागू की जाती हैं। शर्तें इतनी अव्यवहारिक होती हैं कि मजबूर किसान कर्ज तो ले लेता है, लेकिन लाख जतन करने के बाद भी उस कर्ज को लौटाने की स्थिति में नहीं आ पाता। कर्ज उसका मरते दम तक पीछा नहीं छोड़ता। किसानों को अपनी खेती से भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। खेती में इस्तेमाल होने वाली चीजों की कीमत सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती जा रही है और उसके उपज की कीमत धराशायी हो रही है। गौर करने पर हम पाते हैं कि न केवल कृषि की उत्पादन लागत ही बढ़ती जा रही है, बल्कि बीज, उर्वरक, सिंचाई के साथ-साथ, स्वास्थ्य, यातायात सब चीजें महंगी होती जा रही हैं। पहले जब उत्पादन कम होता था तो कीमत बढ़ जाती थीं, लेकिन अब भूमण्डलीकरण के इस दौर में तो फसल कमजोर होने पर कीमतें बैठ जाती हैं।

सरकार की गैरजिम्मेदारी और उसकी व्यवस्थागत पेंचिदगियां किसानों के मौजूदा कुरूप

स्वरूप पर भी लीपापोती करती रहती हैं। महिला किसानों और किसानों के बेटे द्वारा की गई खुदखुशी को 'किसानों की आत्महत्या' नहीं माना जाता, क्योंकि इनके नाम से जमीन नहीं है। यह कैसी विडम्बना है कि इस देश में आत्महत्या की परिस्थितियों का शिकार वही किसान हो जिसके नाम से खेत हो, यानि वही किसान खुदकुशी करे जिसके नाम से भू-जोत हो। पुरानी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के जमाने में यह संभव था कि किसान पीढ़ी दर पीढ़ी सदियों तक एक ही अवस्था में पड़ा रह सकता था। वह अपने उपभोग की वस्तुओं बीज, जानवर आदि को अपनी ही गतिविधियों से प्राप्त कर लेता था। अपनी शेष जरूरत की वस्तुएं उसके गांव के भीतर से ही सीमित विनिमय और उद्यम करके प्राप्त हो जाती थीं। किसान की इस अवस्था में तब तक कोई दिक्कत नहीं थी जब तक प्रकृति या शासक वर्ग उसमें कोई व्यवधान न खड़ा कर दे, लेकिन उदारीकरण के बाजार अर्थव्यवस्था से जुड़ने के बाद यह कतई संभव नहीं है कि वह सदियों तक तो दूर अब पलभर भी इसी ठहराव में पड़ा रहे। बाजार की जरूरतें छोटे से छोटे किसान को भी बाध्य कर देती हैं कि वह प्रतिस्पर्धा में बाजार से भांति-भांति की कृषि सामग्री को प्राप्त करे, भले ही उसके लिए कर्ज ही क्यों न लेना पड़े। आधुनिक पूंजीवादी खेती की यही मांग है कि उसमें हर बार बढ़ी हुई मात्रा में निवेश किया जाए। अगर किसान ऐसा नहीं करेगा तो उसकी उपज बहुत गिर जाएगी। हर साल बढ़ी हुई मात्रा में निवेश करना छोटे किसानों के बस की बात नहीं होती। अपनी पूंजी न होने के कारण उन्हें कृषि सामग्री को उधार में खरीदना पड़ता है, जिस कारण उन्हें न केवल कृषि सामग्री महंगी पड़ती है, बल्कि उसके लिए लिये गए कर्ज का अत्यधिक ब्याज भी अदा करना पड़ता है। बुंदेलखंड ही नहीं पूरे देश में इस तरह के 'मजबूर' किसानों की ही संख्या सर्वाधिक है। ऋण उपलब्धता भी छोटे और धनी किसानों के लिए अलग-अलग होती है। सहकारी संस्थाओं और बैंकों से ऋण या क्रेडिट कार्ड

वगैरह लेना छोटे किसानों के लिए बड़ा ही दुरूह कार्य होता है। मुट्ठीभर धनी किसानों को ऋण देने के लिए तो बैंक मैनेजर उनके घरों के चक्कर काटते नजर आते हैं। क्रीमीलेयर वाले इन किसानों के बैंक अधिकारियों से अपनी आर्थिक-सामाजिक हैसियत के कारण अच्छे रिश्ते होते हैं। इसलिए सर्वसुविधा सम्पन्न इन किसानों की कोई समस्या नहीं है। ऐसे में साहूकारों से लिया गया ऋण छोटे किसानों को उनकी फसल का पूरा मूल्य दिलवाने में बाधक होता है। वे सरकारी क्रय एजेंसियों या खुले बाजार में अपनी उपज न बेंचकर उन साहूकारों को बेचने के लिए विवश होते हैं, जिनसे वे कर्ज लिये होते हैं। गांव के साहूकार कर्ज देते समय ही छोटे किसानों के उत्पादों के दाम तय कर लेते हैं, जो बाजार दर से बहुत कम होता है। आजादी के बाद देश की कृषि के पूंजीवादी विकास से अमीर किसान ही सर्वाधिक लाभान्वित होते रहे हैं। 25 लाख ट्रैक्टरों में से ज्यादातर अमीर किसानों के ही पास हैं। 1.5 करोड़ पंपिंग सेटों में से ज्यादातर इन्हीं के खेतों की सिंचाई करते हैं। सरकारी संस्थाओं से ऋण, किसान क्रेडिट कार्ड, कृषि सब्सिडी और अन्य सरकारी योजनाओं का लाभ ज्यादातर इसी वर्ग को मिलता है। आत्महत्या करने वाले किसानों में इनकी संख्या नहीं के बराबर है। फिर भी कृषि बीमा योजना और सरकार द्वारा मिलने वाला बाढ़ और सूखा राहत का एक बड़ा हिस्सा इनके ही जेब में जा रहा है।

वैसे बुंदेलखंड में क्या छोटे-क्या बड़े हर तरह के किसान परेशानहाल हैं। सबकी माली हालत दिनों दिन खराब होती जा रही है। बैंकों या साहूकारों का कर्ज चुकाना उनके लिए असंभव सा हो गया है। भविष्य में यह संकट जैसे-जैसे गहराता जाएगा, किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाएं बढ़ती जाएंगी। आज जरूरत है इसको रोकने की। किसानों के लिए बन रही नीतियों के निर्माण प्रक्रिया में किसानों को भागीदार बनाकर इस पर कुछ हद तक रोक लगाई जा सकती है। वातानुकूलित कमरों में बैठने वाले नौकरशाहों को क्या पता कि

आज का किसान कितना बेहाल है? उसके घर का चूल्हा जल भी रहा है या नहीं, उसके बच्चे स्कूल जा भी रहे हैं या नहीं, या फिर उनके घर के बीमार को उपचार मिल रहा है कि नहीं।

साहूकारी प्रथा प्राचीन काल से ही बदनाम प्रथा रही है। शोषण और उत्पीड़न के लिए कुख्यात इस प्रथा का दूसरा रूप आज के बैंक हो गए हैं। जरूरतमंद को कर्ज नहीं मिलता और अगर मिल भी जाता है तो उनके पैसों का बंदरबांट बैंक कर्मचारी-अधिकारी, दलाल और डीलर कर लेते हैं। अव्यवहारिक कर्ज वितरण का नतीजा यह हो रहा है कि कर्जदार किसान बैंक से लिया गया ऋण लौटाने की स्थिति में नहीं आ पा रहा है और वसूली की निर्मम कार्रवाई से परेशान होकर खुदकुशी कर ले रहा है। इस पुस्तक के माध्यम से ऐसे तमाम मामलों की तह में जाने की कोशिश हमने की है। पुरातन साहूकारी प्रथा बुंदेलखण्ड में आज भी चल रही है। दादू-दबंग छोटे-छोटे कर्जों की एवज में गरीब-मासूम आदिवासियों की बहू-बेटियों को गिरवी रख लेते हैं।

यहां गरीबी इस कदर है कि राशन कार्ड की सूची में नाम नहीं होने पर लोग आत्महत्या कर ले रहे हैं। घास की रोटी खाने की बातें केवल कहानियों में सुनी जाती रही हैं, लेकिन बुंदेलखंड में लोग आज भी घास की रोटी खाते हैं। कश्मीर की कड़कड़ाती ठंड से लेकर राजस्थान की कहर बरपाती गर्मी और असम के बरसाती वनों तक जितनी विविधता यहां की जलवायु में है, शायद उतनी ही भारी अंतर है यहां के लोगों के जीवन स्तर में भी है। भारत में अगर दुनिया के एक चौथाई आईटी इंजीनियर पैदा हो रहे हैं तो एक तिहाई गरीब भी यहीं रहते हैं, जिनको दो वक्त का भोजन भी मयस्सर नहीं है। हमारा देश अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में दुनिया के पांच देशों में शुमार है तो विश्व का हर चौथा अनपढ़ भी

भारतीय है। सच तो यह है कि आस्थाओं की इस भवभूमि में तर्क की कसौटी पर भी तमाम चीजें कसी जाती हैं, लेकिन भूख जैसी सच्चाई को हमारी सरकारें सदैव तर्क की कसौटी पर कसने से भागती हैं और अन्न के बगैर मर रहे अभागे लोगों की मौतों को भूख से हो रही मौत मानने को तैयार नहीं है। बच्चे, महिलाएं, क्या बूढ़े, क्या नौजवान तमाम लोग भूख से दम तोड़ रहे हैं, लेकिन सरकार है कि इसको मानने को तैयार नहीं है। बुंदेलखंड में गरीबी, भुखमरी और कुपोषण को हमने नजदीक से देखा और महसूस किया कि इसको एक पुस्तक की शक्ल में सबके सामने लाया जाए। इस पुस्तक के माध्यम से किसानों की आपबीती, गरीबों और कुपोषित लोगों की असल तस्वीर और सरकारी नीतियों पर दृष्टि डालने की कोशिश की गयी है। इस प्रयास में अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान के निदेशक श्री भागवत प्रसाद का बहुत ही बड़ा और रचनात्मक सहयोग रहा है। बीच-बीच में कई अग्रजों और मित्रों का भी हमारे इस प्रयास में उत्साहजनक सहयोग मिला। आशा है उदारीकरण के दौर में बुंदेलखंड के किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या और भूख से हो रही मौतों के कारणों और परिस्थितियों को समझने में यह पुस्तक सहायक होगी।

मनोरंजन सिंह

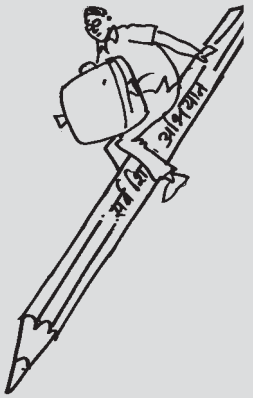

भूख

भूख का समाजशास्त्र

भूख का समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र बहुत ही गूढ़ रहस्यों से भरा हुआ है। संसार में कुछ मुट्ठी भर लोग हैं जिनको 'भूख' लगती ही नहीं। अगर लगती भी है तो बहुत कम। ये लोग अपनी भूख बढ़ाने के लिए बहुत परेशान रहते हैं। तरह-तरह का उद्यम करते हैं। इनके पास डॉक्टर है, ये डॉक्टरों से सलाह लेते हैं। डॉक्टर इन्हें सलाह और दवाएं देता है। इनके पास कोई श्रमसाध्य काम भी नहीं है, इसलिए जिम जाकर कसरत करते हैं। ये वे लोग हैं जिनके बारे में हमारे गांव के बुजुर्ग कहते हैं कि ये सब मुंह में सोने का चम्मच लेकर पैदा हुए हैं। अर्थात ये धनी वर्ग है। ये लोग जिम इसलिए जाते हैं कि कुछ श्रम करने से उनको भूख लगेगी। वे यह भी जानते हैं कि भूख नहीं है तो जीवन नहीं है। इनको पता है कि भोजन से जीवन चलता है, यदि भोजन कम हुआ तो जीवन की गति कम हो जाएगी। ये वही लोग हैं जिनके लिए हमारे नेता भी पलक-पावड़ें बिछाये रहते हैं। सरकार में जाते ही उनके लिए तमाम नियम कानून बनाते हैं। यहां धूमिल याद आते हैं- उनके अनुसार यह वर्ग न तो रोटी बनाता है और न तो रोटी खाता है, यह सिर्फ रोटी से खेलता है।

इसी दुनिया में एक बड़ा वर्ग भी है और उतना ही बड़ा अभागा भी है। इस वर्ग को भूख लगती है, लेकिन उसको खाना नहीं मिलता। शारीरिक श्रम करता है, लेकिन श्रम के

लोकतंत्र में किसी बड़े अपशकुन की तरह एक बड़ा वर्ग भी है जो बड़ा अभागा है। इस वर्ग को भूख लगती है, लेकिन उसको खाना नहीं मिलता। अगर एक समय भोजन मिल भी गया तो दूसरे वक्त की कोई व्यवस्था नहीं। यह बड़ा वर्ग कुपोषित है और भूखे पेट असमय मौत के मुंह में समाता जा रहा है।

यह सच है कि पिछले 16 वर्षों में पूरे देश में कुल रोजगार में कमी और बेरोजगारी में बढ़ोत्तरी हुई है। उत्तर प्रदेश और बुंदेलखण्ड भी इससे अछूता नहीं है।

भूख से मौतों की गणना तो मुश्किल है क्योंकि सब जानते हैं भूख से हुई मौतों को, लेकिन कारण ढूंढे जाते हैं मरने के बाद।

अनुपात में मजदूरी नहीं मिलती। अगर भोजन एक समय मिल गया तो दूसरे वक्त की कोई व्यवस्था नहीं। यह बड़ा वर्ग कुपोषण से ग्रस्त है। भूखे पेट असमय मौत के मुंह में समाता जा रहा है। लोकतंत्र में इस तरह की बातें किसी बड़े अपशकुन की तरह हैं, लेकिन इसकी किसी को परवाह नहीं। हमारी सरकारों और उसकी मशीनरी को तो एकदम नहीं। क्योंकि यह एक तीसरे किस्म का वर्ग है जिसका पेट भरा हुआ है फिर भी हर समय भूखा रहता है।

भूख से मौत

उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड इलाके में भूख से मौतों की खबरों की अचानक बाढ़ आ गयी। समाचार पत्र और पत्रिकाओं की कवर स्टोरी के रूप में यहां की खबरें प्रकाशित हुईं। सरकार का ध्यान भी गया, लेकिन स्थितियां जस की तस हैं। भूख से टूट चुके ये लोग अपने जिगर के टुकड़ों के खिलाफ ही हिंसक होते जा रहे हैं। भूख से बिलबिलाते बच्चों को खाना मांगने पर पीट-पीटकर सुला देते हैं, फिर जब चारों तरफ से अपने को असहाय पाते हैं तो उनकी हत्या तक कर दे रहे हैं और खुद भी आत्महत्या का रास्ता अख्तियार कर ले रहे हैं। निश्चित तौर पर यह बातें विचलित करने वाली हैं, लेकिन इस कटु सच्चाई से हमारी सरकारें विचलित नहीं होतीं।

बांदा जिले के बड़ोखर गांव में लुभानी शेख का परिवार रहता था। उनकी माली हालत बहुत खराब थी। पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण मिला तो उनकी पत्नी अमीना बेगम ग्राम पंचायत की सदस्य चुन ली गई। लेकिन दाने-दाने के मोहताज इस परिवार के सामने भरपेट भोजन सदैव की तरह समस्या बनी रही। ग्राम पंचायत सदस्य होने के कारण अमीना बेगम का राशन कार्ड तो मुफ्त में बन गया, लेकिन राशन मिले तो कैसे, घर में

फूटी कौड़ी भी नहीं थी। भूख की बेजारी इतनी बढ़ी कि एक दिन अमीना बेगम ने अपनी बेटी अमीरा बानों पर पहले मिट्टी तेल डाला और आग लगा दी, फिर घर में रखी कुल्हाड़ी से अपने आठ साल के लाडले पर हमला किया। इन वारदातों को अंजाम देने के बाद अमीना ने अपने ऊपर किरोसिन तेल डालकर खुद को आग के हवाले कर दिया। जब शरीर में जलने की पीड़ा हुई तो पड़ोस के तालाब में छलांग लगा दी।

अमीना बेगम की परिस्थितियों पर ध्यान देना होगा। वह बड़ी लड़की शाहिदा बानो की बीमारी और तंगहाली से जूझ रही थी। पंचायत सदस्य चुने जाने के बाद अमीना विकास खंड अधिकारी और ग्राम प्रधान से लगातार गुहार लगाती रही कि सरकारी योजनाओं के तहत उसको और उसके परिवार के लोगों को काम दिया जाए, लेकिन इस परिवार को कोई काम नहीं मिला। लुभानी शेख ने बताया कि हमने जिलाधिकारी से लेकर अपने ग्राम प्रधान तक से काम मांगा, बार-बार मांगा, लेकिन हम गरीबों की कौन सुनता है। पत्नी ग्राम पंचायत मेंबर थी, इसलिए बिना पैसा के गरीबी वाला राशन कार्ड तो बन गया, लेकिन घर में पैसा तो था नहीं, इसलिए राशन कहां से लाते। 6 अक्टूबर 03 को हादसे वाली रात इन हालातों से जुझते-जुझते अमीना बदहवास हो गयी थी और उसने घुट-घुटकर मरने से बेहतर समझा एक बार में सारा खेल खत्म कर दो और उसने वही किया। लुभानी शेख बताते हैं कि घटना के बाद जिन कर्मचारियों ने उसके घर राशन पहुंचा दिया था, वे अब तगादा करने आते हैं। हम उनको कहां से पैसा देंगे।

मुफ्त नहीं बनता कार्ड

गरीबों के लिए बनने वाला बीपीएल (गरीबी रेखा के नीचे) कार्ड भी मुफ्त में नहीं बनता। ऐसा नहीं कि इस बारे में सरकारी अमला नहीं जानता या जनप्रतिनिधियों को पता नहीं

खाने को चाहे अन्न का दाना न हो लेकिन मौत के बाद इस बात की स्वीकारोक्ति होना की मौत भुखमरी से हुई है बहुत मुश्किल है। जिम्मेदार संस्थाओं के लिये आसान है मौत के कारणों की तलाश के नाम पर जो जिन्दा हैं उनके चरित्र पर लांछन लगाना।

भूख का समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र बहुत ही गूढ़ रहस्यों से भरा हुआ है। संसार में कुछ मुट्ठी भर लोग हैं जिनको 'भूख' लगती ही नहीं, अगर लगती भी है तो बहुत कम। यह वर्ग ऐसा है जो न तो रोटी बनाता है और न तो रोटी खाता है, यह सिर्फ रोटी से खेलता है।

है। गरीबी का कार्ड भी घूस लेकर बनता है। बांदा जिले के नरैनी तहसील के महुआ विकास खंड में पड़ने वाला बड़ोखर बुजुर्ग, जहां लुभानी शेख के परिवार के साथ हादसा हुआ। उसी गांव की रजवा बताती है कि उसके पास बीपीएल कार्ड बनवाने के लिए घूस देने के वास्ते पैसा नहीं था। गांव के लोगों, सरकारी कर्मचारी और अधिकारियों के अलावा नेताओं से उसने कहा कि उसका कार्ड बनवा दीजिए। उसके पास कार्ड बनाने वाले कर्मचारी को देने के लिए पैसा नहीं है, तो उसको जवाब मिला जो भी होगा नियम के अनुसार ही होगा और अपने समय से होगा, ज्यादा भाग-दौड़ मत करो। नतीजा यह है कि रजवा गरीबी की रेखा से नीचे रहते हुए भी कार्ड नहीं बनवा सकी है। अगर ईमानदार सर्वे कर लिया जाय तो बुंदेलखंड में ऐसी तमाम रजवा मिल जाएंगी, जो घूस का पैसा नहीं होने के कारण बीपीएल कार्ड से वंचित है, जबकि उनकी इस कार्ड के लिए पात्रता है। हालांकि यह समस्या केवल बुंदेलखंड की नहीं पूरे प्रदेश की है।

जानलेवा राशन कार्ड

यह सुनकर शायद आपको भरोसा न हो कि कोई राशन कार्ड के लिए भी खुदकुशी कर लेता है। लेकिन यह बुंदेलखंड की एक कटु सच्चाई है और यहां की भुखमरी को बहुत ही खतरनाक रूप में रेखांकित करती है। इस साल 20 अगस्त की शाम तिंदवारी क्षेत्र के पलरा गांव में टिर्रा के 30 साल के बेटे लालू ने राशन कार्ड के लिए फांसी लगाकर जान गांव दी। उस दिन गांव में राशन कार्ड की खुली बैठक थी। पिता टिर्रा का नाम तो बीपीएल सूची में शामिल था, लेकिन लालू का नहीं। देर तक बैठक में वह अपना नाम जुड़वाने का प्रयास करता रहा, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। बैठक छोड़कर लगभग तीन बजे घर आ गया। पत्नी केता चारा काटने गई थी। पिता भी घर पर नहीं था। सूने घर में अपने

कच्चे खपरैलदार कमरे के दरवाजे अंदर से बंद करके लठे में पत्नी की साड़ी से फंदा बनाया और उसमें झूल गया। लालू की शादी तीन वर्ष पहले ही हुई थी। उसके कोई संतान नहीं हुई। वह मजदूरी करता था। लालू की विधवा केता ने बताया कि पिता के साथ दोपहर से ही लालू राशन कार्ड की बैठक में चला गया था। वापस आते ही उसने फांसी लगा ली। लालू की बहन रन्नो ने बताया कि उसकी शादी के लिए पिता ने 10 हजार रुपए गांव के छुट्टू महाराज से कर्ज लिया था। यह आज तक अदा नहीं हो पाया। छुटटू महाराज की कुछ दिनों पूर्व हत्या कर दी गई। अब उसके पुत्र तगादा करते हैं। हालांकि कभी कोई धौंस-धमकी नहीं दी। बहन का यह भी कहना है कि गांव के राकेश शिवहरे से भी सात हजार रुपया कर्ज लिया था, वह भी बकाया है।

लालू का कोई भाई नहीं था। उसकी दो बहनें ही हैं। दो बीघा पट्टे की भूमि बाबा के नाम है। इसमें उसके पिता के और दो भाई हिस्सेदार हैं। खानेभर को भी अनाज नहीं मिल पाता था। घर बेहद खस्ताहाल और टूटा-फूटा है। घर में एक पसेरी (5 कि०) भी अनाज नजर नहीं आया। गांव के करन सिंह नंदगोपाल सिंह और कोदूराम गुप्ता ने बताया कि लालू गरीबी रेखा के नीचे के कार्ड के लिए परेशान था। उसमें कोई ऐब नहीं था। वह बहुत शांत स्वभाव का था। गरीबी इतनी कि लालू का अंतिम संस्कार चंदे से किया गया। लालू का पलरा गांव तिंदवारी विधानसभा क्षेत्र में है। कैबिनेट मंत्री विशंभर प्रसाद निषाद यहीं से विधायक हैं। उप जिलाधिकारी सदर हवलदार सिंह यादव का कहना है कि लालू के पिता के नाम पहले से ही बीपीएल कार्ड है। इस बार की सूची अभी फाइनल ही नहीं हुई है। इसलिए राशन कार्ड न बनने पर आत्महत्या कर लेने की बात सही नहीं है। उन्होंने बताया कि लालू की विधवा को कार्ड दिया जाएगा। पारिवारिक लाभ योजना से भी मदद की जाएगी। सवाल फिर वही कि क्या ये सारी सहूलियतें पहले नहीं दी जा सकती थीं?

अपनी तंगहाली या कहें की बदहाली से परेशान जान देने वालों का वास्तविक ऑकड़ा तो नहीं है लेकिन एक जिले में सालाना ऐसे मामले 150 से 200 तो होते ही हैं। यह अलग बात है कि जांच एजेंसी अपनी रिपोर्ट में क्या लिखती है। लेकिन अनुमान है कि पूरे बुंदेलखण्ड में सालाना 700 से 1000 बदहाल आत्महत्या करते हैं।

मौत के कारण जब ढूंढे जाते हैं तो लिखा जा सकता है कुपोषण से मौत, क्षय रोग से मौत, सिल्कोसिस से मौत या विषैला पदार्थ खाने से मौत। कारण की तह में कोई नही जाना चाहता बल्कि कारण को छुपाने के कारण ढूंढे जाते हैं। लोग मरते हैं तो मर जायें पर तंत्र पर आंच न आने पायें।

अगर लालू का नाम पहले ही राशन कार्ड की सूची में शामिल कर लिया गया होता तो शायद लालू का जीवन बचाया जा सकता था।

पलरा गांव के प्रधान योगेंद्र कुमार सिंह पटेल को भी दलित लालू को अंत्योदय राशन कार्ड न मिलने और उसके आत्महत्या कर लेने का अफसोस है। प्रधान ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि बनाई गई सूची से वह खुद संतुष्ट नहीं हैं। सूची में 151 नाम ऐसे हैं जिनके पिता, पति का नाम या जाति दर्ज नहीं है। इस गड़बड़ी के कारण 14 अगस्त को बैठक में काफी शोर-शराबा हुआ था। पुरानी सूची में अंत्योदय के 128 और बीपीएल के 212 कार्डधारक हैं। तमाम पात्र सूची में शामिल होने से वंचित हो गए हैं। सहूरपुर मजरा का चुन्नीलाल बहुत गरीब है। बैठक में रोता-गिड़गिड़ाता रहा, लेकिन उसका नाम शामिल नहीं किया गया। गांव की लगभग सात हजार आबादी है। तकरीबन तीन हजार मतदाता हैं। सर्वाधिक दलित परिवार हैं। बुन्देल खण्ड के अधिकार गाँव राशन कार्ड की विसंगतियों के शिकार हैं। समाधान के प्रयास उनसे दूर हैं।

आर्थिक तंगी :

मरने के बाद का सारा इंतजाम पहले

चित्रकूट के कर्वी कोतवाली के सेमरिया गांव 60 साल के चुनबुद अली का परिवार रहता है। चुनबुद राजगिरी का कार्य करता था। इससे उसके परिवार की रोजी-रोटी किसी तरह चल जाती थी। इसी राजगिरी के काम से उसने अपनी पांच पुत्रियों का विवाह गरीब-गुरबों के यहां किया। एक बेटी फातिमा का पति नकारा हो गया तो वह अपने पिता के घर आकर रहने लगी। उसका पुत्र अली मात्र 15 वर्ष का है। बुढ़ापे का असर और कामधाम की कमी

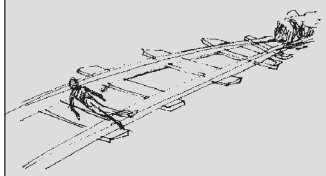

से वह अक्सर परेशान रहता था। चुनबुद की पत्नी चंदा ने बताया कि वह अक्सर कहता था कि सभी लोग आत्महत्या कर लें। घर के लोग उसकी बात को मजाक में उड़ा देते थे और कहते कि इसका तो दिमाग खराब हो गया है। इधर गरीबी रेखा का कार्ड न बनने से उसके सामने भोजन का संकट आए दिन बना रहता था। इससे वह काफी परेशान था। 13 अगस्त की बात है, उसने बाग में अपनी कब्र खोद डाली। इसके बाद अपने कफन का सामान खरीदकर घर ले आया। इतना सब कुछ करने के बाद भी घर वाले कुछ समझ नहीं पाए। लेकिन चुनबुद तो ठान चुका था, वह तड़के घर से निकला और घर से एक फर्लांग की दूरी पर स्थित रेलवे लाइन पर जाकर लेट गया। वहां से गुजरी एक मालगाड़ी ने उसकी इहलीला समाप्त कर दी। मृतक के पुत्र तसव्वर ने बताया कि हमारे परिवार पर किसी का कर्ज नहीं है। दो बीघा खेती पर गुजारा नहीं होता था, क्योंकि खेत में बोई जाने वाली फसल को बंदर तथा जानवर चट कर जाते हैं। उसने बताया कि घर में कोई कमाने वाला नहीं था।

कार्ड नहीं बना तो सीताराम राम को प्यारा हो गया

बांदा में तंगहाली का कोई ओर-छोर नहीं है, अब अंत्योदय और बीपीएल राशन कार्ड गरीबों और किसानों की जान के दुश्मन बन गया हैं। ताजी घटना में स्वतंत्रता दिवस के दिन अंत्योदय कार्ड रद हो जाने से परेशान और बेहद गरीब दलित की सदमे से अचानक मौत हो गई। सदर तहसील के निवाइच गांव का रहने वाला सीताराम रैदास बहुत गरीब था। उसके दो बेटे 14 साल का बंशगोपाल और 12 साल का चुन्नू इतनी कम उम्र में सूरत में मजदूरी करते हैं। एक पुत्र मात्र छह वर्ष का है और तीन बेटियां भी हैं। इनमें सबसे बड़ी शिवदेवी की शादी हो चुकी है। 17 साल की अम्रता और 4 साल की अंकिता घर में

आदिवासी परिवार यदि अपनी ऊबड़खाबड़ जमीन में हाड़तोड़ मेहनत करके कुछ पैदा कर भी ले तो पैदावार का तीन चौथाई से भी ज्यादा महाजन ले लेता है। अब सोचने का सवाल है कि वे घास के सिवा खायें भी तो क्या।

जलीय घास या अन्य ऐसे ही पदार्थों की रोटी से बीमारियां तो लगातार होती हैं और ये असमय काल के ग्रास भी बनते हैं पर प्रशासन है कि ताकता ही नहीं।

छल, प्रपंच, झूठ, फरेब और षड्यंत्र आदिवासियों की नियति की तरह हो गये। हर कोई उन्हें लूटता है और हुकूमत अपने नुमाइंदों के साथ आराम फरमाती है।

हैं। सीताराम के पास अंत्योदय कार्ड था। जिलाधिकारी के अंत्योदय कार्ड रद करने का फरमान आया तो उसका कार्ड भी जमा हो गया। ग्राम प्रधान शिवशंकर द्विवेदी ने बताया कि कार्ड बनाने के लिए हुई खुली बैठक में सीताराम का नाम अंत्योदय कार्ड सूची में शामिल नहीं हुआ। बैठक में सीताराम भी आया था। वह परेशान हो गया। सीताराम की पत्नी कलमतिया ने बताया कि कार्ड न बनने से उसका पति दिनभर परेशान रहा। कई बार उसने कहा कि हम भूखन मर जइबे कार्ड नहीं बनो है। कलमतिया ने उसे भगवान का वास्ता देकर तसल्ली दी। रात में थोड़ा सा खाना खाकर सीताराम सो गया और कुछ ही देर में उसकी अचानक मौत हो गई। कलमतिया ने बताया कि उसके पति को कोई बीमारी नहीं थी, उसकी मौत कार्ड नहीं बनने के सदमें से हुई है। ग्राम प्रधान और कई ग्रामीणों ने भी इस बात की तस्दीक की। इस बारे में उप जिलाधिकारी सदर हवलदार सिंह यादव का कहना है कि किसी भी गरीब को अंत्योदय या बीपीएल कार्ड से वंचित नहीं रखा जाएगा। खुली बैठक में जारी हुई सूची में नाम न होने पर भी अगर पात्र है तो कार्ड जारी किया जाएगा। उन्होंने कार्ड नहीं बनने के सदमे से मौत से असहमति जताते हुए कहा कि बहुत से गरीब हैं, जिनका कार्ड नहीं बना है। उन्होंने बताया कि इस मामले की जांच कराकर असलियत का पता लगाया जाएगा।

नाम था मंगल

दुरेड़ी का मंगल सिंह जब तंगहाली बर्दाश्त नहीं कर पाया तो 27 जनवरी, 2003 को चंबल एक्सप्रेस के आगे कूदकर आत्महत्या कर ली। मंगल सिंह लकवाग्रस्त था। शारीरिक अक्षमता एक अभिशाप की तरह तो था ही, ऊपर से तीन बेटियों के भविष्य की चिंता खाए जा रही थी। परिवार के किसी सदस्य को कभी-कभार काम मिल जाता था तो घर का

चूल्हा जलता था। बाद में काम भी मिलना बंद हो गया। मंगल की पत्नी और तीन बेटियां लाख कोशिश करके भी मंगल को खाना खिलाने में असमर्थ हो जाती थीं। अपने समाज में महिलाओं के लिए काम मिलना भी बहुत दुष्कर कार्य है। आर्थिक तंगी पूरे परिवार के लिए थी। लेकिन दो साल से अपंग हो चुके मंगल इसके लिए अपने को ही दोषी मानता था। कुंठा उसको घेरे रहती थी। उसको लगा कि मेरी वजह से पत्नी और बेटियां ज्यादा परेशान होती हैं और उसने अंततः अपनी जीवन लीला खत्म करने की ठान ली और चंबल एक्सप्रेस के आगे कूद गया।

16 साल की भोला

गड़रिया गांव में देवीशंकर बहुत ही तंगहाली में जी रहे हैं। उनके परिवार के पास न तो कोई काम है और न ही अपनी खेती बाड़ी। देवीशंकर भूमिहीन हैं। कई-कई दिनों तक फांके के कारण तीन साल पहले इनके घर एक बड़ा हादसा हुआ। 16 साल की इनकी बेटी भोला ने एक खतरनाक फैसला कर लिया। पिता की बेबसी उससे देखी नहीं गयी और एक दिन उसने फांसी लगाकर जान दे दी। रोज-रोज पेट के लिए चल रहे जद्दोजेहद से भोला ने तो छुटकारा पा लिया, लेकिन देवीशंकर और उसका परिवार आज भी उसी हाल में बेहाल है। कई-कई दिनों तक घर में खाना नहीं बनता।

कितनों का नाम गिनाएं

सरकार माने या न माने बुंदेलखंड की दारूणदशा यहीं खत्म नहीं होती। तंगहाली और भूख से मरने वालों की लंबी फेहरिश्त है। कमासिन ब्लॉक के जरखिनगांव में रहने वाले सियानंद यादव ने भूख से तड़पकर दम तोड़ दिया। गांव वाले बताते हैं कि सियानंद के घर

फर्जी कागजों के आधार पर निकाले गये कर्ज का सच सब जानते हैं लेकिन उससे मुक्ति पर कोई बात नहीं करना चाहता। 24 वर्ष पहले जिस बैंक कर्मी के जाल बट्टे नें पूरे गाँव को कर्जदार बना दिया वह शायद सेवा निवृत्त होकर आराम का जीवन जीता होगा। फर्जी कर्ज की जांच फाइलों में दबी धूल खाती होगी लेकिन गाँव उस अपराध की सजा भुगतता है जो उसने किया ही नहीं।

जंगलों पर सरकारी कब्जों के बाद अब केवल वनक्षेत्र बचे हैं और वन गायब हो गये हैं। जाहिराना तौर पर अदिवासी जंगलों के बाहर हो गये। जीविकोपार्जन के लिये जो जमीन मिलनी थी या तो वह मिली ही नहीं और यदि मिल भी गयी तो उस पर खेती मुमकिन नहीं। उनकी बदहाली के लिये कौन जिम्मेदार है और आदिवासी विकास के नाम पर किसका विकास होता है सब जानते हैं पर सब खामोश।

कई दिनों से चूल्हा नहीं जला था। थोड़ा पीछे चलें तो वर्ष 2003 के जनवरी महीने में बुंदेलखंड में चार लोगों ने आत्महत्या कर ली। बांदा जिले के पतवन गांव की बेलपतिया, शहर के कौशलपुरी मोहल्ले के रोहित और बबेरू के राज सिंह ने तंगहाली से आजिज आकर अपनी इहलीला समाप्त कर ली। बुंदेलखंड का यह जिला अभिशप्त बन गया है। नरैनी तहसील के गजपतीपुर कलां में लल्लू सिंह, बड़ोखर विकासखंड के हरदोनी गांव के बारेलाल रैदास ने भी भूख से लड़ने का जब दम खो दिया तो आत्महत्या का रास्ता अख्तियार कर लिया। बारेलाल के भाई छोटेलाल बताते हैं कि बारेलाल की माली हालत इतनी खराब थी कि अक्सर बच्चों को भूख से तड़पते खाली पेट सोना पड़ता था। इसको लेकर वह सदैव परेशान रहता था। पतरा गांव के रवीन्द्र ने भी आर्थिक कंगाली में आत्महत्या कर ली। अमलीकौर में रहने वाले बाबूलाल की पत्नी ने भी गरीबी से तंग आकर फांसी लगा ली। बाबूलाल का परिवार मजदूर वर्ग का है। काम नहीं मिलने से परिवार के सदस्यों के लिए रोटी के लाले पड़े थे। ऐसे में बाबूलाल और उसकी पत्नी अपने को लाचार पा रहे थे और थक हारकर उसकी पत्नी ने अपने संघर्ष को फांसी पर झूलकर विराम दे दी। ऐसे ही बेलदान गांव का पुन्ना भी प्रतिदिन के झंझावात को खत्म कर मौत को ही गले लगा लिया।

कमला सोई तो फिर नहीं उठी

नहरी गांव में भी जबर्दस्त गरीबी है। यहां का दलित और पिछड़ा वर्ग लगातार भूख से जद्दोजेहद कर रहा है। लोटन प्रजापति भूख और गरीबी की लगातार प्रताड़ना से मानसिक रोगी हो गया। उसकी पत्नी 35 साल की कमला, चार बेटियां और एक बेटा भीषण तंगहाली में जी रहे थे। लोटन के नाम एक बीघा जमीन थी। घरेलू जरूरतों के लिए

काछीपुरवा के देवीदयाल से इन लोगों ने पैसा लिया। इसके एवज में जमीन का वह छोटा टुकड़ा भी गिरवी है। इस परिवार के पास अपनी खेती नहीं है। लोटन मानसिक रोगी है। ऐसे में कमला मजदूरी करके जो कुछ लाती थी उसी से घर का चूल्हा जलता था। उसके ऊपर लगभग 20 हजार रुपए का कर्ज चढ़ा हुआ था। रोज-रोज मजदूरी भी नहीं मिलती थी। एक आदमी की कमाई पर सात लोगों का पेट भरना तो वैसे ही नामुमकिन है। अपने भूखे रहकर कमला बच्चों और पति को खाना दे देती थी। ऐसा कितना दिन चलने वाला था, कमला भी शारीरिक रूप से कमजोर हो गयी। ऊपर से साहूकारों की धमकी। भूखा पेट एक रात कमला सोई तो फिर सुबह नहीं उठी। उसकी मौत हो चुकी थी। 35 साल की कमला ने वह सबकुछ देख, सुन और झेल लिया जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। आज स्थिति यह है कि उसके बच्चे गांव में भीख मांग-मांगकर अपना और बाप का पेट पाल रहे हैं। केवल नरही में भूख और गरीबी के कारण पांच मौतें हो चुकी हैं।

कौशाम्बी के विकासखंड मंझनपुर के समदा गांव में 50 साल के छुट्टन की भूख से बेदम होकर जान निकल गयी। वह घर का इकलौता कमाऊ सदस्य था। उसकी मौत के कारण रोज कमाने-रोज खाने का क्रम भी टूट गया। उसके परिवार में दो बेटियां और पत्नी शीला हैं।

भूख से मौत का पेंचोखम

नरौनी गांव में हुई भूख से मौतों की जांच हो गयी। जांच करने वाले अफसर का कहना है कि यह मौतें भूख से नहीं हुई। प्रभागीय वन अधिकारी, प्रमुख सचिव पीके झा के निर्देश पर जांच करने गांव में गये थे। गंगा प्रसाद प्रजापति, कमला, बांचू और भागवत की मौत का कारण उनको भूख नहीं दिखा। खैर जब डॉक्टर भूख से मरने का सर्टिफिकेट नहीं

पुलिस का जो ढांचा है उसमें आपराधिक विश्लेषण ही संभव है। ऐसे में अगर पुलिस इन आत्महत्याओं के पीछे गरीबी और भूख को नहीं मानती तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है।

निरक्षर और दुनिया के छल–प्रपंच से दूर इन सहरिया समुदाय के लोगों से कुछ छुद्र लोगों ने लाभ दिलाने के नाम पर ठगी की। इन गरीबों के नाम पर फर्जी ;ण और उनकी जमीनों पर कब्जे की तमाम निर्मम कहानियां हैं।

देता तो वन विभाग के अधिकारी तो डॉक्टर भी नहीं हैं। जिन दिनों ये मौतें हुई थीं तब जिले के कलेक्टर मुकेश मेश्राम ने एक अखबार को दिये बयान में भूख से मौत को स्वीकार किया था। मेश्राम का कहना था कि गरीबी और कुपोषण से बचाव के लिए जो एहतिहाती कार्य होने चाहिए थे, नहीं हुए। उन्होंने एक पत्रिका से बातचीत में कहा था कि जिले में रोजगार के अवसर हैं, खाने के लिए अनाज है लेकिन व्यवस्था की कमी है। जब उड़ीसा के काला हांडी में लोग भूख से मर रहे थे तब भी हमने देखा कि अनाज भंडार ओवर फ्लो कर रहे थे। व्यवस्थागत कमियों से पता नहीं क्या क्या विपदा आ जाये?

वर्ष 2001 में स्थानीय अखबारों में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। एक एनजीओ ने बांदा जिले में एक साल के भीतर हुई 190 आत्महत्याओं का ब्यौरा जुटाया। अखबारों ने इन आत्महत्याओं के कारणों को भी गिनाया था। बांदा जिले के लोगों की माली हालत पर भी दृष्टि डाली थी। जिले की गरीबी और बेरोजगारी को इसका मुख्य कारण माना गया। यह तो तथ्य है कि बांदा क्या बुंदेलखंड के लगभग सभी जिलों से काम की तलाश में हर साल भारी संख्या में लोगों का पलायन होता है। साल के 8-10 महीने लोग अपने घर–गांव को छोड़कर बाहर रहते हैं। आमतौर पर पलायन करने वालों के उम्र के लोगों ने ही उस साल इतनी बड़ी संख्या में खुदकुशी की थी। इस संख्या में कई नाबालिग भी शामिल हैं। पुलिस फाइल में ये नाबालिग छात्र हैं। इसका मतलब यह है कि इन छात्रों की पढ़ाई लिखाई में कहीं न कहीं गरीबी ही आड़े आती रही है। आत्महत्या की संख्या 190 में उन लोगों की खुदकुशी को शामिल नहीं किया गया, जहां आपसी समझ विकसित है और वहां की आत्महत्याओं के मामले थानों तक नहीं पहुंचे। इनमें वे खुदकुशी भी शामिल नहीं हैं जिनके परिवार वाले लोक लाज के भय से मरने का कोई और कारण बताकर अंतिम संस्कार कर देते हैं। पुलिस का भय इस तरह के हादसों को दबाने के सबसे कारगर उपाय

हैं। अगर पुलिस की मानें तो इसमें अत्यधिक हादसे घरेलू झगड़ों की वजह से होती हैं।

पुलिस वैसे भी इस तरह की घटनाओं का समाजशास्त्रीय या आर्थिक विश्लेषण तो करती नहीं है। पुलिस का जो ढांचा है उसमें आपराधिक विश्लेषण ही संभव है। ऐसे में अगर पुलिस इन आत्महत्याओं के पीछे गरीबी और भूख को नहीं मानती तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है। पुलिस का सेट फार्मूला है-महिला अगर आत्महत्या करती है तो उसमें या तो पति-पत्नी का अनबन होता है या उसके पीछे दहेज का मामला। छात्र अगर खुदकुशी करते हैं तो उनका रिजल्ट इसके लिए दोषी होता है या उनका प्रेम-प्रसंग बस।

घास की रोटी

टीकमगढ़ के दलित और सहरिया आदिवासियों की वास्तविक स्थिति चिंताजनक है। 2004 में तमाम स्थानीय अखबारों में तखा गांव के लोगों की दुःखभरी कहानी प्रकाशित हुई। अखबारों ने लिखा कि यहां के लोग अपनी छुधा तृप्ति के लिए घास की रोटी खा रहे हैं। ये महाराणा प्रताप के वंशज नहीं है और न ही मुगलों के सताए हुए हैं, फिर भी घास की रोटी खा रहे हैं। टीकमगढ़ के सौ से अधिक परिवारों वाले आदिवासियों के इस गांव में सबके सब भूमिहीन हैं, खानाबदोश। इस गांव की जिला मुख्यालय से दूरी मात्र तीन किलोमीटर है, लेकिन जिला प्रशासन नहीं जानता कि तखा गांव के लोग घास की रोटी खाते हैं। वैसे भी इस तरह की संवेदनशील बातें उनको अखबारों के जरिये ही पता चलती है। गांव में कुल 116 परिवार हैं। यहां कई दशकों से यही स्थिति है।

बरसात के दिनों में ये लोग गांव के पास वाले तालाब, पोखर एवं खेतों से समाई घास निकालते हैं। उसके बीजों को अलग करते हैं, उसका संग्रहण करते हैं और फिर उसी की

सहरिया जनजाति के बारे में माना जाता है कि ये जिस माहौल या प्राकृतिक संरक्षण में रहते हैं, उसको अपना आराध्य मानते हैं। यह जनजाति समुदाय सदैव से पीपल और बरगद की पूजा करता रहा है। इनको नुकसान पहुंचाना इनके लिए पाप और अक्षम्य अपराध है।

एक फीसदी सहरिया परिवार की ऐसी माली हालत नहीं है कि वह छह महीने भी अपना भरण पोषण कर सकें। वनों से बेदखल हो चुका यह समाज प्राकृतिक आपदाओं के बाद और बदतर स्थिति में पहुंच गया है।

रोटी बनाकर गाढ़े समय में अपना और बच्चों का पेट भरते हैं। लोगों ने बताया कि जब आदिवासी पूरी तरह कंद-मूल पर आश्रित होते थे तो उनका पेट इस घास की रोटी को पचा पाने की स्थिति में होता था, लेकिन अब परिस्थितियां बदल गईं हैं, वन इनके हाथों से चला गया है, खाने की परंपरागत शैली भी बदल गई है, ऐसे में समाई घास की रोटी इनके लिए जानलेवा साबित हो सकती है। डॉक्टर आरएस बुंदेला चेतावनी देते हैं कि अगर जलीय घास की रोटी खाएंगे तो हैजा का खतरा है। घास में कई तरह के जहरीले तत्व होते हैं, घास में समाया हुआ सैल्यूलोज आंतों को क्षतिग्रस्त कर देता है। पाचन क्रिया पर बुरा असर पड़ता है, कई भयानक व्याधियां जन्म ले सकती हैं।

कुदऊ बताते हैं कि राशन कार्ड देने के एवज में उनका बकरा, उनकी गाय ले गए, लेकिन आज तक उनको राशन कार्ड नहीं मिला। हरपाल की पीड़ा भी कुछ ऐसी है। अंत्योदय कार्ड देने के लिए ग्राम विकास अधिकारी उनसे भी एक बकरा ले गया, लेकिन दुबारा उनसे नहीं मिला। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का कोई मतलब नहीं रहा, क्योंकि हर परिवार की स्थिति कुदऊ और हरपाल की ही तरह है। जब राशन कार्ड बनेगा तभी तो उनको सरकारी कोटे का राशन मिलेगा। राशन दुकानदार को तो फायदा ही फायदा है। सरकारी अमला घने जंगलों में झांकने तक नहीं आता। हां, तब आता है जब उसको भोले भाले आदिवासियों से कुछ आमदनी की उम्मीद रहती है। एक कोटेदार ने ही नाम प्रकाशित नहीं करने का शर्त पर बताया कि इन आदिवासियों और दलितों के नाम का राशन कार्ड तो बन गया है और उन्हीं कार्डों के आधार पर राशन की निकासी होती है, लेकिन कार्ड ग्राम विकास अधिकारियों के पास है। मल्ला बताता है- हम लोग भूखे हैं, हमारे पास खाने के लिए कुछ भी नहीं है। जंगली मशरूम या समाई घास की रोटियां खा लेते हैं।

इनकी समस्या भूमि और भूख है। ये धरतीपुत्र हैं लेकिन इनके पास स्थायी तौर पर रहने भर के लिए भी जमीन का एक छोटा टुकड़ा भी नहीं है। दबंग लोग इनकी जमीन को हथिया लिये हैं। कुछ तो फर्जी ऋण के भी शिकार हैं। सुखदेव, दौलत, साढूमल ने ठगी करके सहरिया समुदाय के कुंजी, नन्हें, मोती, सुंदर, कालू, मल्ली, हिरडवा, भइयालाल, रामलाल और जानकी के सिर फर्जी ऋण मढ़ दिया है। स्थानीय बैंकों और सरकारी समितियों से जो पैसा इन लोगों ने लिया भी नहीं उसके कर्जदार हैं। बैंक मैनेजर ने कंचनपुर सहरिया बस्ती के धीरज, सनके, बद्री और रत्ना के नाम पर बकरी पालन के लिए निकाला गया ऋण अपनी जेब में रख लिया है। वसूली का जोर देखकर ये लोग राजस्वकर्मियों को देखते ही घने जंगलों में भाग जाते हैं। घसान नदी के किनारे जंगल में जब मुलाकात मल्ला से हुई तो वह काफी डरा सहमा था। उसे यह समझाने में बहुत वक्त लग गया कि हम राजस्व विभाग से नहीं हैं। मल्ला ने बताया- साढूमल के सुखदेव ने मुझे ललितपुर बुलाया, मेरा फोटो खिंचवाया। कई कागजों पर अंगूठा लगवाया और आते वक्त मुझे 100 रुपए दिये। इसके बाद क्या हुआ मुझे नहीं मालूम। बाद में तहसील के लोग आये और बैंक से लिये गये कर्ज के लिए मारने-पीटने लगे। तब मैं जान सका कि सुखदेव ने उसके साथ दगा कर दिया है। मड़वारा के काशीराम ने कर्ज वसूली के संत्रास से खुदकुशी कर ली।

निरक्षर और दुनिया के छल-प्रपंच से दूर इन लोगों से कुछ छुद्र लोगों ने लाभ दिलाने के नाम पर ठगी की। इन गरीबों के नाम पर फर्जी ऋण और उनकी जमीनों पर कब्जे की तमाम निर्मम कहानियां हैं। इस गांव में दर्जन भर विधवाएं हैं, लेकिन उनको विधवा पेंशन नहीं मिलता। इनके पति काम नहीं होने के कारण भूख से दम तोड़ दिए। इनका आवास झोपड़ी है, इन झोपड़ियों पर भी भू-माफियाओं की सदैव नजर रहती है। यहां के लोगों की

अंग्रेजों ने 1863 में जब वन विभाग की स्थापना की थी उसके पहले तक आदिवासियों को जंगल से लकड़ी, चारा और अन्य वनोपज आदि के उपयोग पर न तो कोई रोक था और न ही कोई सरकारी दिशा-निर्देश।

हाईकोर्ट का एक आदेश है कि आदिवासियों को लघु वन उपज जंगल से बीनने और बेचने का अधिकार है। वे इसके लिए स्वतंत्र हैं।

मानें तो बस्ती गिराने की गुप-चुप तैयारी चल रही है। अपना पेट भरने में असमर्थ इन लोगों पर बेघर-बार होने का खतरा मंडरा रहा है। ललितपुर के रामचरन की तीन एकड़ जमीन पर महाजन का कब्जा है। कोमल की मौत के बाद भद्दा उसके जमीन को हथिया लिया। कोमल की विधवा मेहनत-मजदूरी करती है।

सहरिया आदिवासियों के बारे में

अगर इतिहास पर नजर डालें तो वस्तुतः सहरिया की उत्पत्ति 'सहारा' शब्द से हुई है। इसका अर्थ होता है 'जंगल'। जंगल और सामाजिक अर्थव्यवस्था के ताने बाने से जुड़ा इनका जीवन ही इनको सहरिया की संज्ञा देता है। सालभर तेंदुल, महुआ, खैर, मकोहा, फांगकी भाजी, बेर, काकोरा और सहजन जैसे जंगली उत्पादों को वे पूरी संजीदगी के साथ अपने जीवन की गतिविधियों से जोड़कर रखते हैं। अनाज में ये ज्वार-बाजरा का उत्पादन करते हैं, वह भी अपनी जरूरतों के मुताबिक।

सहरिया जनजाति के बारे में माना जाता है कि ये जिस माहौल या प्राकृतिक संरक्षण में रहते हैं, उसको अपना आराध्य मानते हैं। यह जनजाति समुदाय सदैव से पीपल और बरगद की पूजा करता रहा है। इनको नुकसान पहुंचाना इनके लिए पाप और अक्षम्य अपराध है। इसके पीछे तर्क है कि तमाम जंगली वृक्षों से लाख निकलता है, लाख से चुड़िया बनती हैं और ये सुहाग के प्रतीक होते हैं, ऐसे में इन वृक्षों को नुकसान पहुंचाने के बारे में सोचना भी सुहाग (स्वयं) पर आघात करने जैसा है।

इस समुदाय पर अच्छी समझ रखने वाले और पत्रकार सचिन कुमार जैन बताते हैं कि सहरिया जंगल के प्रति पूरी तरह समर्पित और जिम्मेदार रहते हुए उनका संरक्षण करते

हैं, लेकिन सरकार की वन नीति के कारण उनकी जीवन संरचना पर प्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक असर पड़ा। वास्तव में वन नीति बनाने का एकमात्र उद्देश्य यह रहा है कि प्राकृतिक रूप से जंगल पर नियंत्रण रखने वाले सहरिया समेत सभी आदिवासियों का उससे सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाए और कीमती वनोपजों और अन्य प्राकृतिक संपत्ति पर सरकार का सीधा नियंत्रण हो जाए।

अंग्रेजों ने 1863 में जब वन विभाग की स्थापना की थी उसके पहले तक आदिवासियों को जंगल से लकड़ी, चारा और अन्य वनोपज आदि के उपयोग पर न तो कोई रोक था और न ही कोई सरकारी दिशा-निर्देश। 1865 में पहले भारतीय वन अधिनियम के माध्यम से सरकार को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वह जंगल और जंगल से जुड़ी भूमि को अपने नियंत्रण में कर ले। तब तक आदिवासी जंगलों से अपना जुड़ाव महसूस कर रहे थे और अंग्रेजों के कारिंदे यदा कदा जंगलों की ओर रूख करते थे। आदिवासियों को एक निश्चित मात्रा में जीवन से जुड़े वनोपजों के उपभोग की छूट थी। लेकिन लूट खसोट के आदी अंग्रेजों ने 1878 में एक और अधिनियम बनाकर आदिवासियों को इन आंशिक लाभों और वन से सटे जमीनों से पूरी तरह से बेदखल कर दिया। यह बेदखली आजादी के बाद भी जारी है।

उत्तर प्रदेश के ललितपुर और मध्य प्रदेश के सीमावर्ती आठ जिलों में सहरिया आदिवासियों की अच्छी खासी आबादी है। इनमें से एक फीसदी परिवार की ऐसी हालत नहीं है कि वह छह महीने भी अपना भरण पोषण कर सकें। वनों से बेदखल हो चुका यह समाज प्राकृतिक आपदाओं के बाद और बदतर स्थिति में पहुंच गया है। स्वाभवतः यह समुदाय बहुत ही आलसी और सीमित जरूरतों पर निर्भर रहने वाला माना जाता है। न्धों

खुरंट, लखंजर, जैतुपुरा, सेमरखेड़ा, पापरा, गोठरा और सकरा गांवों में लोग बहुत ही तंगहाली में हैं और घास, फिकरा की रोटी खाते हैं। इन गांवों के 189 परिवारों के यहां खाद्य संकट है। 69 परिवार के पास अपना आवास नहीं है।

आंवला, बेल, गोंद, शहद, महुआ, गुली, आचार, कंदमूल, फल और जड़ी बूटियां सहरिया और गौड समुदाय को फाकामस्ती से बचाते थे। ये सारी चीजें इनके भोजन का अंग हुआ करती थी, लेकिन अब तो छोटे छोटे वनकर्मी भी इनको जंगल के पास फटकने नहीं देते।

अगर किसी जतन से दो वक्त के राशन या अन्य खाद्य सामग्री का इंतजाम हो जाये तो यह दो दिन तक कोई काम नहीं करता। समाज विज्ञानी तो बताते हैं कि यह आलसीपन जंगलों के साथ उनके गूढ़ सम्बन्धों के कारण है। जो अब धीरे धीरे खत्म हो रहा है। पहले ये विशाल वन सम्पदा के मालिक हुआ करते थे। वन के प्रति पारम्परिक विश्वास इनका ऐसा था कि यह कभी जंगल को नुकसान पहुंचाने की कल्पना तक नहीं करते थे। ऐसा इसलिए था कि इनके जीवन की गतिविधि जंगल से ही शुरू होती थी और जंगल में ही खत्म हो जाती थी। अब इनको छोटे-छोटे अनुपजाऊ भूखंडों तक सीमित कर दिया गया है। इसलिए उद्यम जरूरी होने के कारण इनका आलसीपन का तिलिस्म टूट रहा है। उपेक्षा, सामाजिक-आर्थिक शोषण के बीच उनकी प्रकृति भी बदलने लगी है। तीन साल पहले ललितपुर जिले के विकास खंड गड़वरा के दो न्याय पंचायतों धौरीसागर और सोंरई में एक सर्वेक्षण हुआ था। इस सर्वेक्षण में कुछ सैंपल ही नहीं लिये गए थे, वरन घर-घर जाकर सर्वे किया गया था। सर्वे के मुताबिक इन न्याय पंचायतों में कोई सरकारी योजना नहीं चल रही थी, जबकि शासन और जिला प्रशासन रजिस्टर में बड़ी बारीकी से आंकड़ेबाजी कर क्षेत्र के विकास का दावा कर रहे थे। यहां यह सवाल है कि धरातल पर जब कोई सरकारी योजना अस्तित्व में नहीं है, तो रजिस्टर में दर्ज आंकड़े और खर्च पैसों का क्या हुआ। खुर्रट, लखंजर, जैतुपुरा, सेमरखेड़ा, पापरा, गोठरा और सकरा गांवों में आज भी देखा जा सकता है कि सरकारी धोखा, जिसे हम प्रशासनिक भ्रष्टाचार कह सकते हैं, किस तरह चल रहा है। यहां के लोग बहुत ही तंगहाली में हैं और घास, फिकरा की रोटी खाते हैं। इन गांवों के 189 परिवारों के यहां खाद्य संकट है। एक वक्त अगर खाना मिल भी गया, तो दूसरे वक्त का कोई जुगाड़ नहीं है। 69 परिवार के पास अपना आवास नहीं है। कुछ ने झोपड़ी बना भी ली है तो उसका इस बारिश में ढहना तो तय है ही, अगर पहले तेज आंधी

आई तो बरसात के पहले ही बेघर हो जाएंगे। जाड़े में तो इनका भगवान ही मालिक है।

अनादिकाल से जंगल व उसके आसपास रहने वाले सहरिया व गौड़ जाति के वनवासी वस्तुतः वन उपजों पर निर्भर रहते थे। आंवला, बेल, गोंद, शहद, महुआ, गुली, आचार, कंदमूल, फल और जड़ी बूटियां इनको फाकामस्ती से बचाते थे। प्राकृतिक रूप से यह सारी चीजें इनके भोजन का अंग हुआ करती थी, लेकिन अब तो छोटे छोटे वनकर्मी भी इनको जंगल के पास फटकने नहीं देते। यह वनकर्मी इन वनवासियों के लिए आतंक बने हुए हैं। दूसरी ओर वन माफिया जंगल को साफ करते जा रहे हैं। तेंदूपत्ता पर सरकार का कम अपराधियों का ज्यादा नियंत्रण है। ये आदिम वनवासी छोटे-छोटे वन उपजों से अपना और परिवार की क्षुदा तृप्ति तो करते ही थे उनको बेचकर अन्य जरूरतें भी पूरी करते थे। उनको अब बेदखल कर दिया गया है, हालांकि हाईकोर्ट का एक आदेश है कि आदिवासियों को लघु वन उपज जंगल से बीनने और बेचने का अधिकार है। वे इसके लिए स्वतंत्र हैं।

जंगलों से बेदखल हो जाने के बाद इनके खान-पान पर प्रतिकूल असर पड़ा है। जमीन थोड़ा बहुत है तो वह या तो अनुपजाऊ है या साहूकारों के पास गिरवी है। नतीजा यह है कि बदले रहन-सहन और भोजन के अभाव में इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हुई है। संक्रामक या छोटी-मोटी बीमारियों के गिरफ्त में आ गये हैं। जिस बीमारी को देश विदा मान लिया गया है वह चेचक भी इनको या इनके बच्चों को पकड़ लेती है। तीन साल पहले की ही बात है लखंजर गांव में चेचक से पीड़ित पांच बच्चों की मौत हो गयी। पोलियो का जीवनदायी खुराक इनको नसीब नहीं है। सो आज भी इनके बच्चे अपंग हो जाते है। अस्पतालों तक इनकी पहुंच नहीं हो पाती इसलिए यहां गर्भवती महिलाओं का जीवन

बुंदेलखंड में प्राइमरी स्कूलों की स्थिति बहुत विकट है। लगभग हर स्कूल में अध्यापक कम हैं। बजट में लगातार कटौती की जा रही है। मिड डे मील योजना की स्थिति यह है कि मानो सियार को चमड़े की पहरेदारी पर रख दिया गया है।

पता नहीं सरकार का कितना धन सर्वशिक्षा अभियान पर आ चुका, लेकिन उसका इस क्षेत्र में कोई फायदा नहीं दिखता है। अशिक्षा के ही कारण सहरिया, गौड़ आदिवासी, दलित और पिछड़े लोगों को अपने अधिकारों और सरकारी योजनाओं का कोई ज्ञान तक नहीं है।

भगवान भरोसे ही चल रहा है। गरीबी इतनी कि ये आदिवासी प्रसव पीड़ा से छटपटा रही महिला को ब्लाक मुख्यालय गड़ावरा तक नहीं ले जा पाते। वैसे भी जो लेकर चले भी जाते हैं उनके लिए गारंटी नहीं है कि अस्पताल में डॉक्टर या नर्स मिल ही जायें।

नाम लिखने लगे तो साक्षर बन गए

मड़ावरा ब्लाक की आबादी एक लाख है, लेकिन सरकारी तौर पर साक्षर मात्र 25 हजार हैं। इन साक्षरों में अधिसंख्य ऐसे हैं जिन्होंने केवल अपना नाम लिखना जान लिया है, कुछ पढ़ नहीं सकते। सरकार की सर्वशिक्षा और डीपीएपी योजना यहां दिखती नहीं है। संविधान में प्रदत्त अधिकारों की अगर बात करें तो संविधान अनुच्छेद 45 में यह स्पष्ट कहा गया है कि 'राज्य उन सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा का इंतजाम करेगा जो 14 साल से कम हैं'। हमारे देश में 58 प्रतिशत आबादी 20 साल से नीचे की है। अर्थात् सरकार यदि ईमानदार रहती तो इस इलाके में मात्र 25 फीसदी ही लोग क्यों साक्षर रहते। साक्षरता के लिए मिलने वाले पैसों का आखिर क्या हो रहा है? बुंदेलखंड में प्राइमरी स्कूलों की स्थिति बहुत विकट है। लगभग हर स्कूल में अध्यापक कम हैं। प्राइमरी स्कूलों के बजट में लगातार कटौती की जा रही है। सहायक योजनाएं कुछ लोगों की पाकेट योजनाएं बन गई हैं। मिड डे मील योजना की स्थिति यह है कि मानो सियार को चमड़े की पहरेदारी पर रख दिया गया है। किसी भी स्कूल में सरकारी मानकों के अनुरुप यह योजना नहीं चल रही है, स्कूलों में बच्चों की संख्या भी नहीं बढ़ रही है और जो बच्चे स्कूल आ रहे हैं उनकी पढ़ाई नहीं हो पा रही है। गुरुजी तो मिड डे मील का भोजन तैयार करवाने में ही जुटे रहते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता भागवत प्रसाद बताते हैं कि यहां सबसे बड़ी समस्या निरक्षरता ही है। पता नहीं सरकार का कितना धन सर्वशिक्षा अभियान पर आ चुका, लेकिन उसका इस

क्षेत्र में कोई फायदा नहीं दिखता है। अशिक्षा के कारण यहां के सहरिया, गौड़ आदिवासी, दलित और पिछड़े लोग अमानवीय जीवन जीते हैं। इनको अपने अधिकारों और सरकारी योजनाओं का कोई ज्ञान तक नहीं है।

पढ़े लिखे नहीं होने के कारण इन लोगों पर पटवारी (लेखपाल), पंचायत सेक्रेट्री और वन विभाग के छोटे कर्मचारियों का बड़ा ही आतंक है। सामान्य बोलचाल में भी इन कर्मचारियों को ये लोग 'साहब' कहते हैं और बेहद डरते हैं। यही कारण है कि 383 परिवारों को सरकारी पट्टे पर कब्जा नहीं मिल पाया है। 765 परिवार भूमिहीन हैं। अगर कुछ को पट्टा मिल भी गया है तो उनकी जमीन मामूली कर्ज के एवज में साहूकारों के यहां गिरवी (बंधक) है। लेखपाल ग्राम पंचायत की भूमि प्रबंधक समिति का सचिव और पंचायत सेक्रेटरी अन्य ग्राम्य पंचायत समितियों का सचिव होता है। सभी समितियों का अध्यक्ष ग्राम प्रधान होता है। लेकिन तमाम ग्राम योजनाओं में आ रहे अंधाधुंध पैसे का बंदरबांट करने के लिए ग्राम प्रधान और सेक्रेटरी की दुरभिसंधि है। ऐसे में इन अनपढ़ आदिवासियों और गरीबों का शोषण होना ही है।

दाऊ-दीवान किस्म के नये सामंत और सरकारी शोषण के तो कई उदाहरण हैं। लेकिन मोटे तौर पर कहा जाये तो इन गरीबों को दाऊ-दीवान बेगारी (बिना मजदूरी का काम) कराते हैं। कुछ को बंधुआ बनाकर रखे हुए हैं। सरकारी तंत्र भी सरकारी योजनाओं में काम करने वालों को सरकार द्वारा तय मजदूरी नहीं देता। काम के बदले अनाज योजना हो या अन्य रोजगार योजनाएं, सब कुछ सरकारी अमले की मनमर्जी से चलता है। तमाम लोकप्रिय योजनाओं की जिस कदर यहां अलोकप्रियता है शायद ही कहीं देखने को मिले। इंदिरा आवास क्या होता है बहुत लोगों को नहीं पता। अगर किसी को मिल भी गया है तो अधूरा पड़ा है।

एक दिवस गरीब दिवस है, जिसे 29 जून को मनाया जाता है। हिन्दी महीने के मुताबिक यह जेठ का माह होता है। निरापद गर्मी का महीना। भूख से छटपटाते लोगों के धड़ाधड़ मरने का मौसम।

पिछले साल अखबारों ने गरीब दिवस के दिन अपनी-अपनी कलम की ताकत दिखाई। रोंगटे खड़ा करने वाले वार्षिक और अधकचरे रिपोर्टों पर आधारित खबरों से अखबार अटे पड़े थे।

डीपीएपी (ड्राट प्रोन एरियाज प्रोग्राम)

वैसे यह सूखाग्रस्त इलाकों के लिए योजना है। जो केन्द्र द्वारा संचालित है। लेकिन इस योजना का सूखाग्रस्त इलाके में लागू होना या ना होना पूरी तरह राजनीतिक फैसला हो गया है। पिछले साल देखा गया कि जिस प्रभावशाली मंत्री का क्षेत्र सूखाग्रस्त हुआ उस इलाके को पहले सूखाग्रस्त क्षेत्र घोषित किया गया और जहां का प्रतिनिधि सरकार में कम असरदार था उसको अपने क्षेत्र को सूखाग्रस्त घोषित कराने में तमाम पापड़ बेलने पड़े। डीपीएपी योजना पर विस्तार से चर्चा इसलिए भी जरूरी है कि राजनीतिक हस्तक्षेप ने इसमें तमाम भ्रांतियां पैदा कर दी हैं। भले ही आपका इलाका घनघोर सूखा झेल रहा हो लेकिन उस पर फैसला तो राज्य सरकार को ही लेना होता है। अगर कोई विकासखंड, तहसील या जिला डीपीएपी के तहत आ जाता है तो वहां के लिए एक-एक करके तमाम योजनाएं जारी की जाती हैं और वहां के लोगों के विकास के लिए बेशुमार धन आता है। यह दीगर बात है कि सरकारी योजनाओं का हस्र इन लोगों के लिए बहुत सकारात्मक तो नहीं होता फिर भी कुछ न कुछ भला तो होता ही है।

गरीब दिवस (29 जून)

लोकतंत्र में कुछ विडंबनाएं भी हैं। राजनीतिक तौर पर नेता अपनी सुविधा के तमाम आयोजन करते हैं। उसको वैधानिक जामा पहनाते हैं और इस तरह सबके लिए एक-एक दिवस निर्धारित करते हैं। ऐसा ही एक दिवस गरीब दिवस है, जिसे 29 जून को मनाया जाता है। हिन्दी महीने के मुताबिक यह जेठ का माह होता है। निरापद गर्मी का महीना। भूख से छटपटाते लोगों के धड़ाधड़ मरने का मौसम। अखबार वालों को तो बस इन्हीं दिनों

का इंतजार होता है। इस तरह के समाचारों से सनसनीखेज समाचारों का कोलॉज जो तैयार हो जाता है। पिछले साल सबने गरीब दिवस के दिन अपनी-अपनी कलम की ताकत दिखाई। रोंगटे खड़ा करने वाले वार्षिक और अधकचरे रिपोर्टों पर आधारित खबरों से अखबार अटे पड़े थे। पिछले साल इन समाचारों को ढूढने के बाद हमारे अंदर भी इस बारे में जानने की प्रबल इच्छा जागी। इसलिए इस बार गरीब दिवस के लिए हमने भी एक मुकाम तय किया। हम चले गए मर्यादा पुरूषोत्तम राम की तपस्थली चित्रकूट।

चित्रकूट में सरकारी फाइलों में अब तक दर्ज हैं कम से कम 33 हजार गरीब। हालांकि वास्तविक संख्या इससे अधिक है। ऐसे लोगों के लिए एक सरकारी योजना चलती है- 'अन्नपूर्णा योजना'। इसके तहत प्रति गरीब को दस किग्रा खाद्यान्न मुफ्त में दिया जाता है। लेकिन जब हम लोगों की यहां के कुछ लोगों से बात हुई तो पता चला कि उनको इस योजना के बारे में जानकारी ही नहीं है। जबकि कहीं से भी वे लोग गरीबी रेखा के ऊपर वाले नहीं लग रहे थे। वे बुजुर्ग थे और बेसहारा भी। सरकारी रिकार्ड बताते हैं जिले में इस योजना के 2539 कार्डधारक हैं। लेकिन एक रेंडम तफ्तीश में तमाम लोगों के पास उनका कार्ड नहीं मिला। ऐसे में उनको योजना का लाभ भी मिलता होगा यह तो एक सौ फीसदी संदिग्ध है। लोगों ने बताया कि कोटेदार, ग्राम प्रधान और सप्लाई आफिसर की मिलीभगत से अन्नपूर्णा योजना फेल है। यह आरोप नहीं सच्चाई है। जिसके बारे में पता किया जा सकता है।

यह गरीबों बेसहारों के लिए योजना है। इसलिए स्वाभाविक रूप से बहुत बेचारगी से यह योजना भी चलती है। अगर कोई ईमानदार अफसर तहकीकात करता है तो इसको कार्यान्वित कराने वाले महीने के गल्ले के उठान को ही किसी न किसी बहाने रद्द करवा

तमाम ग्राम योजनाओं में आ रहे अंधाधुंध पैसे का बंदरबांट करने के लिए ग्राम प्रधान और सेक्रेटरी की दुरभिसंधि है। ऐसे में इन अनपढ़ आदिवासियों और गरीबों का शोषण होना ही है।

देते हैं। वर्ष 2005 में गरीबी रेखा के नीचे के लोगों की मई में संख्या थी 36626। जिसको जून में बढ़ाकर 41366 कर दिया गया। अर्थात् एक महीने के भीतर बीपीएल पात्रता वाले 4740 बढ़ गये। इसके पीछे कुछ समाजसेवी संस्थाओं की पहल थी। खैर, आश्चर्य तो यह है कि जून महीने के गल्ले का उठान किया ही नहीं किया गया। गरीब दिवस पर गरीबों को पेट पकड़कर सोने के लिए छोड़ दिया गया।

भूख का सच

दुनिया में हर रोज भूख या भूख से जुड़ी वजहों से 24 हजार लोगों की मृत्यु हो जा रही है। हर दो सेकेंड पर एक व्यक्ति भूखे पेट दम तोड़ रहा है। एक आंकलन के अनुसार 7900 लाख लोग भूखे हैं। उनको दो वक्त क्या एक जून भी रोटी मयस्सर नहीं हो पा रही है। कम से कम 75 से 100 करोड़ लोग भीषण दरिद्रता की स्थिति में रहते हैं। ये लोग अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भी पर्याप्त खाद्यान्न नहीं जुटा पाते। यह भूख उस तरह की नहीं है, जो अकाल के दिनों में रहती है, यह तो दिन, सप्ताह, महीने, साल और युगों से बनी हुई है।

उत्तर प्रदेश की 17 करोड़ से ऊपर की आबादी में भी ऐसे लोगों की संख्या बहुत है, जो जीने के लिए रोजाना भूख से संघर्ष कर रहे है।

दुनिया के इन बेशुमार भूखे लोगों में भारत और भारत के बुंदेलखंड के भी लोग शामिल हैं। इनमें ज्यादातर लोग या तो गांवों में रहते हैं या महानगरों की झुग्गियों में। उत्तर प्रदेश की 17 करोड़ से ऊपर की आबादी में भी ऐसे लोगों की संख्या बहुत है, जो जीने के लिए रोजाना भूख से संघर्ष कर रहे है। कुछ तो इतने थक गए हैं, जो संघर्ष करने के लायक नहीं हैं और असमय मर जा रहे हैं। स्थिति इतनी खतरनाक हो गयी है कि कई कुपोषित परिवार अपने बच्चों को भी रोटी नहीं दे पा रहा है। इंडिया टुडे के रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश पीपुल्स विजिलेंस कमेटी फॉर ह्यूमन राइट्स और एशियन ह्यूमन राइट्स

कमीशन (हांगकांग) के सर्वे के मुताबिक 'हाल के दिनों में उत्तर प्रदेश के वाराणसी, इलाहाबाद, सोनभद्र, जौनपुर, कुशीनगर और मिर्जापुर में लगातार भूख से या उसकी वजह से कुपोषण के कारण सैकड़ों मौतें हुईं। कई गांवों में बच्चे रोटी की जगह मार खाकर सिसकते हुए सो जाते हैं।' एक गरीब ने पीपुल्स विजिलेंस कमेटी फॉर ह्यूमन राइट्स की सर्वे टीम से कहा, 'हमारे गांव में हर तरफ भूख फैली है। सो, शाम होते ही बच्चे भोजन के लिए चीखने-चिल्लाने लगते हैं और भूख के कारण सोना नहीं चाहते। हमारे पास कोई चारा नहीं है। हम उन्हें बुरी तरह पीटते हैं, ताकि वे बुरी तरह चिल्लाएं और थककर सो जाएं।' यह एक बाप का दर्द है और वह भी सोमालिया, कालाहांडी या काशीपुर का नहीं, बुंदेलखंड के एक गांव का। यह एक तथ्य है, लेकिन राज्य सरकार इसको नहीं मानती और सिरे से खारिज कर देती है। यहां सवाल है कि जांच करने वाले अधिकारी और डॉक्टर के यह कह देने से इस तथ्य को नहीं झुठलाया जा सकता कि बुंदेलखंड में भूख से मौत नहीं हो रही है।

भूखों की क्षुधा तृप्ति किसकी जिम्मेदारी

पूरी दुनिया, भारत, उत्तर प्रदेश या बुंदेलखंड में कोई भी भूखा न रहे, यह किसकी जिम्मेदारी है। ऐसा भी नहीं कि भूख का खात्मा संभव नहीं है। मानव जीवन की भूख के कारण हो रही क्षति इसीलिए और दुःखद है कि 'भूख' को समाप्त किया जा सकता है। अगर हम भारत को ही लें, तो हम सब जानते हैं कि हमारे देश में हर व्यक्ति के लिए पर्याप्त खाद्यान्नों का उत्पादन होता है। फिर भी लोग भूख से मर रहे हैं। जहां भूख की समस्या होगी वहां तो कुपोषण रहेगा ही। भारत के पास सबकी भूख मिटाने के लिए आर्थिक और तकनीकी संसाधन भी उपलब्ध हैं। विश्व समुदास के सामने अपनी इन्हीं

अगर कोई विकासखंड, तहसील या जिला डीपीएपी के तहत आ जाता है तो वहां के लिए एक-एक करके तमाम योजनाएं जारी की जाती हैं और वहां के लोगों के विकास के लिए बेशुमार धन आता है।

चित्रकूट में सरकारी फाइलों में अब तक दर्ज हैं कम से कम 33 हजार गरीब। हालांकि वास्तविक संख्या इससे अधिक है। ऐसे लोगों के लिए एक सरकारी योजना चलती है– 'अन्नपूर्णा योजना'। लेकिन लोगों को इस योजना के बारे में जानकारी ही नहीं है।

ताकतों के बलबूते हमने वादा किया था कि वर्ष 2000 तक हम अपने देश में किसी को भी भूखा नहीं रहने देंगे, लेकिन ऊपर दिये गये ब्योरों से तो यही लगता है कि ऐसा नहीं हो सका। इसलिए यहां सवाल उठता है कि वे कौन से कारण हैं जिनकी वजह से भूख को लेकर दुनिया से किये गए वादों को हम पूरा नहीं कर पाए।

एक बात और कि अन्य कारणों के अलावा भूख भी वह बड़ा कारण है जिसके चलते देश के बहुसंख्य लोगों के जीवन की गुणवत्ता पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। हम लाख ढिंढोरा पीट लें, लेकिन क्षुधा निवारण के बगैर देश को सही मायने में महाशक्ति का दर्जा नहीं मिलने वाला। मानवतावादी चितरंजन सिंह कहते हैं कि महाशक्ति के पास जब भूखे और कुपोषित लोगों की फौज रहेगी तो वह अपने सिंहासन को कब तक महफूज रख सकता है। इसलिए भूख का खात्मा एक नैतिक जरूरत के साथ-साथ व्यवहारिक आवश्यकता भी है। हम ऐसा भी नहीं कहते कि भूख को समाप्त करने की कोशिशें नहीं हुईं, योजनाएं नहीं बनीं और उनको लागू नहीं किया गया, सब कुछ हुआ, फिर भी सरकार भले ही न मानें, देश में आज भी भूख से मौतें हो रही हैं।

कुपोषण

कुपोषण मूलतः असमानता और भेदभाव के कारण पैदा होता है। फूले पेट, पतले पांव वाले बच्चे आदिवासी इलाकों, गांव के दक्खिन टोले और शहरों की झोपड़ पट्टियों में आपको अवश्य मिल जाएंगे। ऐसे बच्चों को कुपोषण उनकी मां से मिलता है। गर्भावस्था में इन बच्चों की माताओं का कुपोषण का दंश आनेवाली पीढ़ी भुगतती है। पूरी दुनिया में बाल कुपोषण में भारत का स्थान दूसरा है। दरअसल जन्म के समय कम वजन और बाल कुपोषण सारी बीमारियों की जड़ है। ये जीवन पर्यन्त जीवन क्षमता को प्रभावित करते है।

डॉक्टरों की राय है कि कम वजन वाले और कुपोषित बच्चों को जन्म के बाद शारीरिक, मानसिक और पूरे व्यक्तित्व का विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। कमजोर शरीर और रोग प्रतिरोधक क्षमता का अभाव कुपोषण की ही देन है। कुपोषण से ध्यान और स्मरणशक्तियों का विकास प्रभावित हो जाता है, साथ ही सीखने की प्रक्रिया मंद पड़ जाती है। 'भारत में ऐसे कुपोषित लोगों की संख्या बहुत है। यही कारण था कि वर्ष 1996 में कुपोषण से होने वाले नकारात्मक प्रभावों के कारण भारत को 1344 करोड़ रुपए का नुकसान भुगतना पड़ा था। संपूर्ण भारत में पोषण और स्वास्थ्य पर होने वाले सालाना व्यय से यह राशि दुगुनी है।'

यह तथ्य इतना समझने के लिए काफी है कि बुंदेलखंड में महिलाएं किस हालात में हैं। यह तथ्य महिलाओं के साथ होने वाले निरंतर उपेक्षापूर्ण एवं अधिकारहीन सामाजिक व्यवहार के प्रत्यक्ष परिणाम को दर्शाता है। पिछले दस वर्षों में आम महिलाओं की स्थिति में कोई क्रांतिकारी सुधार नहीं हुआ है। पंचायतों के आरक्षण को छोड़ दिया जाए, तो महिलाओं के हक में और कोई कदम देखने को नहीं मिलता।

गहरी होती गरीबी की खाई

सच कहें तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पिछले 59-60 वर्षों के अनियमित और अनियंत्रित आर्थिक नीति ने अमीरी और गरीबी की खाई को और अधिक गहरा किया है। बुंदेलखंड में तो लगातार पड़ रही दैवी आपदाओं ने तो दूसरे तरह की स्थिति पैदा कर दी है। गरीबों के हिस्से में भूख, बेकारी, बेबसी और लाचारी का अनुपात और अधिक बढ़ गया है। अगर विकास का अर्थ शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा और मनुष्य की गरिमा और सम्मान से है, तो आज भी बुंदेलखंड का बहुसंख्य समुदाय इस विकास से वंचित है। गांवों और शहर की

आश्चर्य तो यह है कि जून महीने के गल्ले का उठान किया ही नहीं किया गया। गरीब दिवस पर गरीबों को पेट पकड़कर सोने के लिए छोड़ दिया गया।

जांच करने वाले अधिकारी और डॉक्टर के यह कह देने से भूख से हो रही मौत के तथ्य को नहीं झुठलाया जा सकता, यह भी सच है कि बुंदेलखंड में इन दिनों भूख से मौतें हो रही हैं।

झोपड़पट्टियों में ही भारत का बहुसंख्यक समुदाय निवास करता है। उदारीकरण और वैश्वीकरण के विकासक्रम ने इसी बहुसंख्य समुदाय का संताप बढ़ाया है। विकास के उपर्युक्त जरूरी तत्व इनके परकोटे को छू नहीं पाए हैं। उदारीकरण और वैश्वीकरण ने अगर कहीं सबसे अधिक खरोचें और घाव बनायी है, तो वह देश के बेकसूर गरीबों के दिलों पर बनायी है। विकास के ये दोनों दूत जिन गांवों और झोपड़पट्टियों में पहुंचे, वहां मानों भूचाल आ गया। वहां के जीवन को तहस-नहस कर दिया। वहां की संवेदना, भाईचारा, प्रेम, सौहार्द सबका अपहरण कर लिया। जिन गांवों और झुग्गियों में पीने के लिए साफ पानी नहीं पहुंचा, स्कूल नहीं पहुंचे और अस्पताल नहीं पहुंचा वहां वैश्वीकरण ने बाजार को पहुंचा दिया। जिस बुंदेलखंड में दो जून की रोटी के लिए लोग संघर्ष कर रहे हैं वहां के गांवों में भी कुकुरमुत्ते की तरह बाजार उग आए हैं। जैसा कि हम जानते हैं बाजार का केवल एक ही चरित्र होता है, येन-केन-प्रकारेण मुनाफा कमाना। मुनाफे की ललक ने संवेदनहीनता का एक नया संस्कार पैदा कर दिया है। इस बाजार में क्रीम-पावडर, टूथपेस्ट, पेप्सी, कोका कोला और देसी पाउच सब कुछ उपलब्ध है। इन बाजारों में लाख ढूंढ़ने पर भी एक चीज नहीं मिलती, वह है सामाजिक सरोकार। गांव के दक्खिन टोला और आदिवासी इलाकों से निकलकर नंग-धड़ंग, फूले-पेट-पतले पांव बच्चों के उन झुंडों को कभी आपने ध्यान से देखा है, जो इस आधुनिक बाजार में सजी वस्तुओं को किस कदर ललचाई और विस्मृत आंखों से देखते हैं। उनको ये बाजार सपना सरीखा लगता हैं। ये वही बच्चे हैं, जिनके घरों के चूल्हे, अन्न के अभाव में अक्सर नहीं जलते। ये बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। लाचारी में मां-बाप की मार खाकर सोने के लिए अभिशप्त हैं। इनकी शारीरिक संरचना इनके घर की माली हालत को खुद-ब-खुद बयां कर देती है।

गरीबी का दंश सर्वाधिक महिलाओं पर

हमारे पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था 'यदि आप किसी राष्ट्र के बारे में मेरी राय जानना चाहते हों, तो मुझे उस देश में स्त्रियों की स्थिति के बारे में बताओ... अगर आज नेहरू जी जीवित होते तो शायद बुंदेलखंड की यात्रा करने से भी कतराते!

बुंदेलखण्ड में हो रही आत्महत्याओं का अगर विश्लेषण किया जाए तो खुदकुशी करने वाले पुरूषों से महिलाओं की संख्या 25 फीसदी अधिक है। इन 190 आत्महत्याओं ने 78 पुरूष हैं तो 112 महिलाएं। इनमें दस से बीस साल की 15 युवतियां और आठ युवक। 20-40 साल की 80 महिलाएं और 61 पुरूष। 40-60 साल की 17 महिलाएं और 9 पुरूष। हर उम्र की महिलाओं की संख्या ज्यादा है। इतना तो तय है कि गरीबी और भूख का बोझ सर्वाधिक महिलाओं पर लदा होता है।

ये कुपोषित महिलाएं

महिलाओं के जीवन का हर चरण कुपोषण, आत्मसम्मान और निर्णय लेने के अवसरों के निषेधात्मक नियमों द्वारा गढ़ा जाता है। केवल बुंदेलखंड ही नहीं देश के हर कोने में ये पीड़ादायी सामाजिक नियम कालांतर से महिलाओं को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते हैं। महिलाओं के सामाजशास्त्र को अगर हम देखें तो स्त्री को दास बनाने वाली सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां दहेज जैसी कुप्रथाओं द्वारा आज भी बरकरार हैं, जबकि दहेज उन्मूलन के खिलाफ हमारे देश में वर्ष 1961 में ही कानून बन गया था। 'दहेज' को ही लें तो एक लड़की परिवार के लिए बोझ बन गयी है और लड़का परिवार के लिए सुख और सुविधा का एक साधन। अगर सपाट शब्दों में कहें तो दासता और समर्पण आज भी

महाशक्ति के पास जब भूखे और कुपोषित लोगों की फौज रहेगी तो वह अपने सिंहासन को कब तक महफूज रख सकता है। इसलिए भूख का खात्मा एक नैतिक जरूरत के साथ–साथ व्यवहारिक आवश्यकता भी है।

पिछले दस वर्षों में बुंदेलखंड की आम महिलाओं की स्थिति में कोई क्रांतिकारी सुधार नहीं हुआ है। पंचायतों के आरक्षण को छोड़ दिया जाए, तो महिलाओं के हक में और कोई कदम देखने को नहीं मिलता।

महिलाओं के जीवन का तरीका है। उपेक्षा, हिंसा और हिंसा की आशंकाओं के साये में तिल-तिलकर जीने के लिए अभिशप्त हैं।

आप अपने दिल पर हाथ रखकर कहिए कि क्या आपके परिवार में आज भी पुत्र जन्म की सदैव कामना नहीं की जाती। ऐसा क्यों है कि कन्या का जन्म आम तौर पर खुशियां नहीं लाता? अब तो कन्या के जन्म की संभावना भी कम होती जा रही है। अल्ट्रासाउंड से जन्म से पूर्व ही गर्भ में ही शिशु के लिंग को जान लिया जाता है। यदि गर्भ में कन्या भ्रूण है तो उसको गिरा दिया जाता है। यही कारण है कि आज भारत में स्त्री आबादी का अनुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 900 महिलाओं का है। कुछ क्षेत्रों में जैसे जनपद जालौन में यह अनुपात 842 तक है।

कुपोषण का चक्र

जन्म से ही महिलाएं एक वंचित और उपेक्षित जीवन को अंगीकार कर लेती हैं। लड़कों की तुलना में कन्या शिशु को मां का दूध अल्प समय तक ही पिलाया जाता है। महिलाओं में कुपोषण की शुरुआत मां के आंचल से ही हो जाती है। लड़कियों को पर्याप्त भोजन नहीं दिया जाता है और जो भोजन देते भी है, वह गुणवत्ता की दृष्टि से पोषणीय नहीं होता। बीमार होने पर लड़कों की तुलना में लड़कियों के उपचार में भी सौतेलापन देखने को मिलता है। यही कारण है कि पांच वर्ष की आयु वर्ग में लड़कों की तुलना में लड़कियों की मृत्यु दर 43 प्रतिशत है।

बुंदेलखंड के दलित और आदिवासी घरों में पांच साल की उम्र पूरा करते-करते लड़कियां परिवार की घरेलू और बाहरी जिम्मेदारियों को वयस्कों की भांति निभाने लगती है। घर के

पर वह अपने से छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं, अपनी बीमार और गर्भवती मां की सेवा करती है। पानी भरती है, इंधन की लकड़ी और मवेशियों के लिए चारा जुटाती है। गोबर के उपले पाथती हैं। घर के बाहर खेतों में काम करती हैं और दूसरे के खेतों में दिहाड़ी पर मजदूरी भी करती हैं। अगर इसे हम देश के स्तर पर देखें तो महिला श्रम का 30 प्रतिशत हिस्सा 6 से 11 वर्ष की मासूम लड़कियों के खाते में आता है। ऐसे में पोषण की बात दूर उनके लिए खेलना और शिक्षा एक सपना होता है।

वयःसन्धि आते-आते लड़कियां अन्य समस्याओं से घिरने लगती हैं। ऐसी लड़कियों को नये तरीके की अनचाही और नहीं सुलझने वाली समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। ऐसे समय लड़कियों को अच्छे पोषण की आवश्यकता होती है, लेकिन मिलता है सामान्य से भी कम पोषण। डॉक्टर बताते हैं कि किशोर वय की लड़कियों में विटामिनों की कमी, यक्ष्मा, भ्रूण नली में संक्रमण, स्त्री रोग और अनियमित मासिक स्राव की उच्च दर पायी जाती है। अगर इन हालातों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें तो उनके जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना उन्हें यही बोध कराती है कि वह बेकार की वस्तु है। शारीरिक स्वास्थ्य से पीड़ित इन लड़कियों का मानसिक स्वास्थ्य और संतुलन बिगड़ जाता है। यही वह उम्र होता है जिसमें उनके साथ यौन अपराध होने की आशंका बहुत प्रबल होती है। बुंदेलखंड में सामंती प्रभाव अब भी कायम है। ऐसे में गरीब की बेटी की रक्षा तो भगवान ही करता है। किशोर वय आते-आते शारीरिक के साथ-साथ सामाजिक असुरक्षा की गिरफ्त में आदिवासियों और गरीबों की लड़कियां जकड़ जाती हैं।

इसके बाद दासता का दौर शुरू होता है। कम उम्र की लड़की की अधिक उम्र के लड़के के

उदारीकरण और वैश्वीकरण नामक विकास के ये दोनों दूत जिन गांवों और झोपड़पट्टियों में पहुंचे, वहां मानों भूचाल आ गया। वहां के जीवन को तहस-नहस कर दिया। वहां की संवेदना, भाईचारा, प्रेम, सौहार्द सबका अपहरण कर लिया।

महिलाओं के जीवन का हर चरण कुपोषण, आत्मसम्मान और निर्णय लेने के अवसरों के निषेधात्मक नियमों द्वारा गढ़ा जाता है। केवल बुंदेलखंड ही नहीं देश के हर कोने में ये पीड़ादायी सामाजिक नियम कालांतर से महिलाओं को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते हैं।

साथ शादी कर दी जाती है। वर चयन प्रक्रिया में इस असंतुलन के पीछे कहीं न कहीं दहेज और पिता की कमजोर आर्थिक स्थिति होती है। बुंदेलखंड के आदिवासियों और दलितों में बेटियों की कम उम्र में शादी का आज भी चलन है। बचपन से अधिकारहीन इन लड़कियों की शादी के बाद अपने गर्भ पर भी अधिकार नहीं होता। कम उम्र में ही वह गर्भवती हो जाती हैं। गर्भावस्था में कोई चिकित्सा नहीं मिलने और खानपान में भी उपेक्षा के कारण सदैव वह बीमार रहती हैं। गर्भावस्था के दौरान तो वह एकांकी जीवन जीने लगती है। घर से बाहर निकलने पर प्रतिबंध होता है। इस प्रकार वह अन्य स्त्रियों की संग-साथ, सहयोग और सुरक्षा से भी वंचित कर दी जाती है।

यह तथ्य है कि बुंदेलखंड ही नहीं भारत में एक महिला अपने पति की तुलना में दुगुना काम करती है। हर पारिवारिक स्त्री पर तीन तरह के बोझ होते हैं-बच्चों का लालन-पालन, घरेलू काम जिनका कोई मूल्य नहीं होता और मजदूरी। घरेलू काम ये स्त्रियों के खाते में डाल दिया जाता है और परम्परा से यह चला आ रहा है। उसके इस काम का न तो कोई कीमत है और न तो पुरुषों द्वारा उसमें कोई सहारा दिया जाता है। सबको खिलाकर बचा तो खा लिया वरना भूखे पेट सो जाना उनके भाग्य में है। वह जीवन भर कुपोषण की शिकार रहती है। महिलाओं के लिए सबसे काला अध्याय तब शुरू होता है, जब उसके पति का देहांत हो जाता है। एक विधवा को सामाजिक, आर्थिक एवं भावानात्मक रूप से अछूत समझा जाता है। जमीन सम्बन्ध हक उसके पुत्रों को स्थानांतरित हो जाता है।

गौर करें

महिलाओं की स्थिति पर एक विहंगम नजर इसलिए आवश्यक है कि भूख और कुपोषण

का सबसे बड़ा हिस्सा उनके ही खाते में जाता है। जब हम भूख की बात करते हैं तो यही तथ्य सामने आता है कि भूख की सर्वाधिक पीड़ा औरतों को ही भोगना पड़ता है। यह सर्वविदित है कि एक गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य और पोषण के स्तर का उसके गर्भ में पल रहे शिशु के स्वास्थ्य पर सीधा असर पड़ता है। अगर महिलाएं कुपोषित रहेंगी तो तय मानिये आने वाली पीढ़ी जन्म से ही कुपोषित पैदा होगी। परम्परागत रूप से परिवार में स्त्रियां सबके भोजन कर लेने के उपरांत बचे-खुचे खाना से ही अपना गुजारा करती हैं। आमतौर पर उसको इस अधिकार से वंचित रखा गया है कि वह पिता, पुत्र, भाई और पति के साथ भोजन करे। पुत्र की लालसा में कन्या शिशु को मां के दूध से वंचित कर दिया जाता है। यह महिलाओं के लिए जन्म के साथ ही कुपोषण की शुरूआत है। मां द्वारा विरासत में कुपोषण प्राप्त लड़कियां किशोरावस्था आते-आते तनाव, हिंसा और गर्भधारण से जुड़ी बीमारियों की गिरफ्त में चली जाती हैं।

कुपोषित मातृत्व

मां बनने योग्य 60 फीसदी दक्षिण एशियाई महिलाएं कम वजन और कुपोषण की शिकार रहती हैं, जबकि सब सहारा अफ्रीका में कुपोषित महिलाएं केवल 20 फीसदी हैं।

गर्भवती महिला की खास देखभाल और गुणवत्ता परक भोजन का अभाव आम है।

88 फीसदी गर्भवती महिलाएं एनिमिया से ग्रस्त रहती हैं। मां के कुपोषण से गर्भस्थ शिशु पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

गर्भावस्था के दौरान भी अधिकतर महिलाएं घर के काम काज के अलावा खेतों में भी

आप अपने दिल पर हाथ रखकर कहिए कि क्या आपके परिवार में आज भी पुत्र जन्म की सदैव कामना नहीं की जाती। ऐसा क्यों है कि कन्या का जन्म आम तौर पर खुशियां नहीं लाता? अब तो कन्या के जन्म की संभावना भी कम होती जा रही है।

अगर किशोर वय लड़कियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें तो उनके जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना उन्हें यही बोध कराती है कि वह बेकार की वस्तु है। बुंदेलखंड में सामंती प्रभाव अब भी कायम है। ऐसे में गरीब की बेटी की रक्षा तो भगवान ही करता है।

परिश्रम करती हैं।

गर्भावस्था के दौरान उनको जरूरी चिकित्सा सलाह और चिकित्सीय सुविधा नहीं मिलती।

जन्म से पहले शिशु का कम वजन

भारत में 33 फीसदी बच्चे जन्म से ही कम वजन के होते हैं। इसके पीछे गर्भावस्था के दौरान उनकी मां का खराब स्वास्थ्य कारण होता है अर्थात् 33 प्रतिशत बच्चे जन्म से ही कुपोषित होते हैं।

इसके विपरीत अफ्रीका में 17 प्रतिशत और अमेरिका में 7 फीसदी जन्म के समय कम वजन के बच्चे होते हैं।

जन्म के समय कम वजन के शिशु को जीवन पर्यन्त मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं घेरे रहती हैं।

कन्या शिशु को पूरा नहीं मिलता मां का आंचल

लड़कों की तुलना में लड़कियों को 2-5 महीने तक ही मां का दूध पीने को मिलता है।

अगले पुत्र की चाह में मां कन्या शिशु को अपना दूध पिलाना शीघ्र बंद कर देती हैं।

ऐसे में मां के पर्याप्त दूध के अभाव में लड़कियों के शरीर की रोग प्रतिरोधक प्रणाली का विकास भी अवरूद्ध हो जाता है।

लड़की को सबसे कम भोजन

परिवार में लड़की और उसकी मां को सबसे कम और सबसे बाद में भोजन मिलता है। आमतौर पर इनके हिस्से अपर्याप्त पोषण वाला भोजन आता है।

पांच वर्ष तक की आयु के 53 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार होते हैं, जिससे उनका वजन भी सामान्य से कम होता है।

लगातार कुपोषण के कारण लड़कियों का शारीरिक और मानसिक विकास प्रभावित होता है।

हम अपने घर और पड़ोस में आम तौर पर देखते हैं कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियां कुपोषण की शिकार अधिक होती हैं।

असहाय किशोरावस्था

किशोरावस्था में कन्या की न तो विशेष देखभाल की जाती है और न ही उनको पर्याप्त भोजन दिया जाता है।

बुंदेलखंड में बहुलांश किशोर कन्याएं रक्त अल्पता की शिकार हैं। कारण है गरीबी और गरीबी से उपजा कुपोषण।

किशोर आयु में विवाह और शारीरिक परिपक्वता से पूर्व गर्भधारण आम बात है।

कुपोषण और परिपक्व गर्भधारण के साथ ही उपचार के अभाव में मातृत्व मृत्युदर में वृद्धि।

लड़कों की तुलना में लड़कियों को 2.5 महीने तक ही मां का दूध पीने को मिलता है। अगले पुत्र की चाह में मां कन्या शिशु को अपना दूध पिलाना शीघ्र बंद कर देती हैं।

हम अपने घर और पड़ोस में आम तौर पर देखते हैं कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियां कुपोषण की शिकार अधिक होती हैं।

महिला उपेक्षा का कारण समझ से परे

सामाजिक अन्याय की शिकार महिलाओं की उपेक्षा समझ से परे है। बुंदेलखंड के अधिसंख्य परिवारों में स्त्री श्रम के चलते ही बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों को भोजन मिलता है, कपड़े मिलते हैं, उन्हें पनाह मिलता है और इस निर्मम समाज में उनके अंदर जीजीविशा पैदा होती है। परिवार के लिए जल और इंधन की व्यवस्था स्त्रियां करती हैं। परिवारों के खेत और गांव की अर्थव्यवस्था स्त्रीश्रम के बलबूते ही फल-फूल रहा है। फिर भी परम्परा यही है कि पुरुष कहता है स्त्रियां कुछ नही करतीं। इसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण में हम पाते हैं कि अनादिकाल से स्त्रियों को दोयम दर्जे की सदस्यता प्राप्त है, अतएव उनका श्रम भी मूल्यहीन, बेकार और उपेक्षित समझा जाता है। सबसे पहले यह धारणा घर में बनती है, तब वह समाज तक पहुंचती है। गौर करने पर तो यही लगता है कि महिलाएं पुरुषों के बनिस्पत तिगुना बोझ जीवन भर ढोती है। गांव के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, आर्थिक गतिविधियों में, खासतौर से घर के रख-रखाव, खेती और आय बढ़ाने वाली गतिविधियों में स्त्रियों का योगदान अनमोल है। यह स्थिति आमतौर पर पूरे देश में है। महिलाओं के योगदान को हम एक-एक-करके देखें।

बिन घरनी घर भूत का डेरा

परम्परा से महिलाओं और कन्याओं की पहली जिम्मेदारी घरेलू कार्य और परिवार की देखभल करना है। एक प्रचलित कहावत है-'बिन घरनी घर भूत का डेरा।' इस कहावत की व्युत्पत्ति भी इसी परम्परा से है। परम्परागत रूप से स्त्रियां और लड़कियां मानो पानी भरने, इंधन और चारा एकत्रित करने के लिए ही बनी हैं। भोजन पकाना, सबको

खिलाना, सफाई और धुलाई, बच्चों-रोगियों और घर के बुजुर्गों की देखभाल का पूरा दायित्व स्त्रियां उठाती हैं। 'एक तथ्य है कि स्त्रियां प्रतिदिन तीन घंटे से अधिक समय तक चूल्हे पर खाना पकाती हैं। इस प्रक्रिया में सांस लेने के दौरान उनके शरीर में बीस पैकेट सिगरेट के धुंए के बराबर कार्बन जाता है। यही कारण है कि लकड़ी पर खाना बनाने वाली स्त्रियों में फेफड़े का कैंसर, दमा, आंख सम्बन्धी दोष और श्वास सम्बन्धी बीमारियां आम होती हैं।'

खेती बाड़ी

कुल कृषि श्रम में 55 से 80 फीसदी हिस्सेदारी महिलाओं का है। पौधों को रोपना, घास-पतवार निकालने के लिए निराई करना और खाद-पानी डालने का काम आमतौर पर स्त्रियां ही करती हैं।

चावल की खेती में लगने वाले कुल कृषक श्रम का आधा हिस्सा महिलाओं के जिम्मे आता है।

दुग्ध उत्पादन के काम में 93 प्रतिशत स्त्रियां लगी हुई हैं।

खाद्यान्नों का रख रखाव और संरक्षण वस्तुतः स्त्रियां ही करती हैं।

खेती के उपकरणों के प्रयोग की महिलाओं को मनाही है। मसलन वे हल नहीं चला सकतीं, ट्रैक्टर से खेत नहीं जोत सकतीं। लिहाजा हाथ से होने वाले लगभग सभी कृषि कार्य महिलाओं को दे दिया गया है।

परिवार की आमदनी में भी महिलाएं काफी योगदान दे रही हैं। रेशम के कीड़े पालना, तेल बनाना, मसाले तैयार करना और मछली पालन जैसे छोटे-मोटे उद्यम अब स्त्रियां

बुंदेलखंड ही नहीं भारत में एक महिला अपने पति की तुलना में दुगुना काम करती है। हर पारिवारिक स्त्री पर तीन तरह के बोझ होते हैं-बच्चों का लालन-पालन, घरेलू काम जिनका कोई मूल्य नहीं होता और मजदूरी।

ही कर रही हैं।

पशुपालन के जरिये दूध, अंडे, ऊन, चमड़ा और मांस का उत्पादन भी महिलाएं करती हैं।

कृषि से इतर दैनिक मजदूरी का काम भी स्त्रियां करती हैं। पत्थर तोड़ने से लेकर मकानों की चिनाई करना और खुदाई तथा गारा मिट्टी का काम भी स्त्रियां करती हैं।

एक तथ्य है कि स्त्रियां प्रतिदिन तीन घंटे से अधिक समय तक चूल्हे पर खाना पकाती हैं। इस प्रक्रिया में सांस लेने के दौरान उनके शरीर में बीस पैकेट सिगरेट के धुंए के बराबर कार्बन जाता है।

महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कुछ और कार्य

बुंदेलखंड में जंगल का बहुतायत होने के कारण जंगल उत्पादों पर आधारित लघु उद्योगों में आदिवासी महिलाओं का 51 फीसदी श्रम लगा है। मसलन डलिया, रस्सी और झाड़ू बनाना, दस्तकारी और घर के काम में आने वाले छोटे-मोटे वस्तुओं को बनाने का काम भी महिलाएं करती हैं। पत्तल, दोना बनाने और तेंदु पत्ता तोड़ने का काम भी स्त्रियां करती हैं। खदानो में अधिकाधिक कार्य महिलाएं ही करती हैं। ईंधन और चारे के लिए महिलाएं दो से तीन बार जंगल जाती हैं और हर बार उनके सिर पर 20-25 किग्रा का बोझ होता है।

असमान मजदूरी

महिलाएं पुरुषों के बराबर ही काम करती हैं, लेकिन मजदूरी में उनके साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता। पुरुषों के बराबर ही कठोर श्रम करने के बावजूद उनको पुरुषों से कम मजदूरी मिलती है। वर्ष 1992 में वस्त्र निर्माण में लगे मजदूरों का अध्ययन करने पर यह पता चला था कि घरों में लगे करघों पर काम करने वाले बच्चों को भत्ता दिया जाता है,

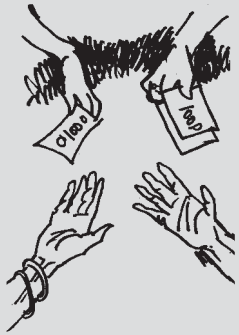

लेकिन वही काम करने वाली लड़कियों और महिलाओं को भत्ते से वंचित रखा जाता था। बुन्देल खंड के झांसी जिले का मऊ रानीपुर क्षेत्र, महोबा का जैतपुर क्षेत्र और विश्व प्रसिद्ध चंदेली साड़ियों के काम में लगी महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय है। यह इसलिए कि उनको मजदूरी देने में सौतेलापन किया जाता है। यह सौतेलापन केवल गैर सरकारी क्षेत्र में ही नहीं है बल्कि जो सरकार न्यूनतम मजदूरी तय करती है उसकी योजनाओं में भी किया जाता है। अव्वल तो पहले उनको काम ही नहीं दिया जाता और दया दिखाकर किसी सरकारी कर्मचारी ने उनको काम दे भी दिया तो वह उस महिला को कम मजदूरी देता है और रजिस्टर पर हस्ताक्षर लेते समय सरकार द्वारा तय मजदूरी दर्ज करता है। महिलाएं अपनी आय को अपने परिवार और बच्चों पर खर्च करती हैं, जबकि पुरुष अपने आय को नशाखोरी में उड़ा देते हैं।

आने वाला कल भी कुपोषित

गरीब भूखी मां की कोख में पल रहा बच्चा स्वभाविक रूप से जन्म से ही कुपोषित होता है। कुपोषण के इस जोखिम को ऐसे बच्चे जीवनपर्यन्त भोगते हैं। यूनीसेफ के ताजा रिपोर्ट के मुताबिक हर साल विकासशील देशों में जन्म लेने वाले कम वजन के बच्चों की संख्या दो करोड़ है। भारत में 30 फीसदी से अधिक बच्चे जन्म के समय वांछित वजन से कम होते हैं। यह कथ्य इसलिए भी जरूरी है कि इन दिनों बुंदेलखंड के बच्चे शायद देश के सबसे कुपोषित बच्चों की श्रेणी में हैं। यूनीसेफ की मानें तो भारत विश्व में सबसे अधिक कुपोषित बच्चों का देश है। इससे यहां प्रति वर्ष 21 लाख बच्चों की मौत हो जाती है। बुंदेलखंड के जौजूदा जो हालात हैं उससे यहां के बच्चों का सहज ही अंदाजा लगाया जा

लकड़ी पर खाना बनाने वाली स्त्रियों में फेफड़े का कैंसर, दमा, आंख सम्बन्धी दोष और श्वास सम्बन्धी बीमारियां आम होती हैं।

महिलाएं अपनी आय को अपने परिवार और बच्चों पर खर्च करती हैं, जबकि पुरुष अपने आय को नशाखोरी में उड़ा देते हैं।

सकता है। सच तो यह है कि कुपोषित बच्चों के जीवन पर ग्रहण जन्म के समय ही लग जाता है। वे अगर शैशवावस्था में बच भी गए तो शेष जीवन में दुर्बलता और काम करने तथा कमाने की अल्पक्षमता के शिकार रहते हैं। 'सामान्य वजन के नवजात बच्चों की तुलना में ढाई किलोग्राम से कम वजन के बच्चों के मरने का खतरा 18 गुना अधिक होता है।' जो बच गए वे जीवनभर कुपोषण और अवरूद्ध विकास से पीड़ित रहते हैं। कम वजन के अलावा उनकी लंबाई अपने उम्र के बच्चों से कम होती है। उनमें से अधिसंख्य रोग और मंदबुद्धि के शिकार हो जाते हैं। उनकी उत्पादकता और अर्जनशक्ति भी कम होती है। खाद्य और कृषि संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक भारत जैसे विकासशील देशों में एक तिहाई बच्चे बौनेपन के शिकार हो जाते हैं। 'इकोनामिक एंड पोलिटिकल विकली' के 4 दिसम्बर, 2004 के अंक में बताया गया था कि 'भारत में हर साल औसतन पांच वर्ष से कम उम्र के 24 लाख, 20 हजार बच्चे कुपोषण के कारण मर जाते हैं।' पांच साल से कम उम्र के 6 करोड़ ऐसे बच्चे हैं जिनका वजन वांछित स्तर से नीचे है।

बाल पोषण पर यूनीसेफ के हाल के रिपोर्ट को देखें तो उसमें कहा गया है कि भारत में 5.7 करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। मतलब पिछले दो वर्षों में इसमें कोई गुणात्मक कमी नहीं आयी है। भारत में पोषाहार से वंचित 14.6 करोड़ बच्चों की विशाल फौज है। प्राइमरी स्कूलों में मिड डे मील योजना का जो हस्र है, उससे भी कोई लाभ होते नहीं दिख रहा है, क्योंकि बड़े पैमाने पर बच्चे अब भी स्कूल नहीं जा रहे हैं। भारत में पोषाहार से वंचित बच्चों की संख्या दुनिया में कुल पोषहार से वंचित बच्चों का एक तिहाई है। अगर यही हाल रहा तो 2015 तक विश्व के सभी बच्चों को भूख से मुक्त करने का लक्ष्य कम से कम भारत में वर्ष 2025 तक भी पूर्ण होने की उम्मीद नहीं है।

कुछ राज्यों में 0–03 वर्ष के बच्चों में कुपोषण की स्थिति

उत्तर प्रदेश	51.7 प्रतिशत
बिहार/उड़ीसा	54.4 प्रतिशत
मध्य प्रदेश	55.1 प्रतिशत
राजस्थान	50.6 प्रतिशत
गोवा	28.6 प्रतिशत
मणिपुर	25.5 प्रतिशत
केरल	26.9 प्रतिशत

एक अनुमान के मुताबिक उत्तर प्रदेश के 51.7 फीसदी कुपोषित बच्चों में सर्वाधिक आदिवासियों, झुग्गी झोंपड़ी में रहने वाले परिवारों और दलितों के ही बच्चे होते हैं।

दो जून की रोटी का संघर्ष

एक सरकारी सर्वेक्षण बेहद चौंकाने वाला है। यह इसलिए कि सरकारी मशीनरी की बातों को भी सरकारें बलाए-ताख रख देती है। तब और जब बात गरीबों की हो। जब जिले में भूख से मौतें हो रही थीं, तबसे एक संवेदनशील जिलाधिकारी नीतीश्वर कुमार ने इसके तह में जाने की कोशिश की थी। उन्होंने जिले के सरकारी अमले को इस काम में लगाया और जो तथ्य मिले उसको केन्द्र और राज्य सरकार को भी भेजा, लेकिन उन तथ्यों का क्या हुआ, आज तक किसी को नहीं मालूम।

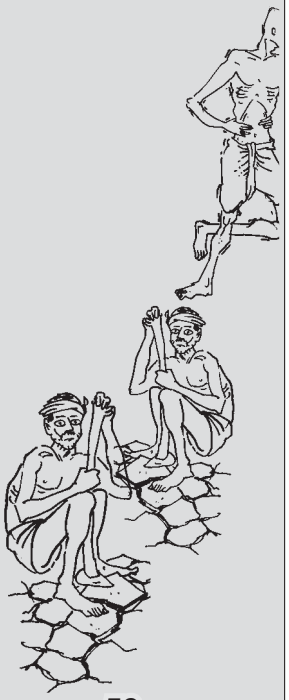

गरीब भूखी मां की कोख में पल रहा बच्चा स्वभाविक रूप से जन्म से ही कुपोषित होता है। कुपोषण के इस जोखिम को ऐसे बच्चे जीवनपर्यन्त भोगते हैं।

यूनीसेफ के हाल के रिपोर्ट को देखें तो उसमें कहा गया है कि भारत में 5ण्7 करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। मतलब पिछले दो वर्षों में इसमें कोई गुणात्मक कमी नहीं आयी है।

सर्वेक्षण की टीम ने जो आंकड़े संकलित किये उसके मुताबिक 2004 में बांदा में 40 हजार लोग भुखमरी के कगार पर मिले। 4 लाख लोगों को दो समय रोज भोजन नहीं मिलता है। इस सर्वेक्षण में ग्राम पंचायतों और चार नगर निकायों का जो लेखा जोखा तैयार हुआ उसके मुताबिक बुंदेलखंड में गरीबी की तुलना उड़ीसा के कालाहांडी से की गई। बांदा में 700 रुपए मासिक आय वाले लोगों की संख्या 20 हजार से अधिक है। यदि प्रति परिवार चार सदस्यों का औसत रखा जाए तो ऐसे निर्धनतम लोगों की संख्या 80 हजार के पार चली जाती है। मतलब 80 हजार से ज्यादा लोग केवल पेट को लेकर बेहद दारूण स्थिति में है।

सर्वेक्षण का तहसीलवार नतीजा यह है-बांदा में 1340, तहसील सदर क्षेत्र में 24024, अर्तरा में 21388, बबेरू में 14628 और नरैनी में 15020 लोग अति गरीब है। एक तथ्य यह उभर रहा है कि ग्रामीण क्षेत्र में ही केवल गरीबी नहीं है। बांदा सदर में भी 1340 लोग भूख से संघर्ष कर रहे हैं। गांव के लोग जिला मुख्यालय पर काम के लिए आने के बारे में सोचें भी कैसे, जब वहां रोजगार होता और उसमें निरंतरता होती, तो 1340 लोग इस हालत में क्यों मिलते। ऊपर जो आंकड़े दिए गए हैं इन लोगों के परिवारों की महीने की आमदनी 700 रुपए है। जब ये लोग चिन्हित हुए तो जिलापूर्ति विभाग ने अपना काम शुरू किया और इन लोगों को अंत्योदय योजना में शामिल कर लिया। इस योजना में प्रत्येक परिवार को हर महीने दो रुपए प्रति किग्रा के हिसाब से 17 किलो गेहूं और तीन रुपए के हिसाब से 10 किग्रा चावल मिलना चाहिए। लेकिन धरातल की सच्चाई यह है कि कोटेदार और ग्राम प्रधान के साथ-साथ आपूर्ति विभाग की मनमानी से ये अंत्योदय कार्डधारी अपना राशन नहीं पा रहे हैं।

जिले की कहानी यहीं खत्म नहीं होती। यह कहानी केवल बांदा या बुंदेलखंड के अन्य जिलों की ही नहीं है, उत्तर प्रदेश के कई जिले इसी स्थिति में हैं। सुप्रीम कोर्ट तक हस्तक्षेप कर चुका है, लेकिन सूबे के मुख्य सचिव भुखमरी को रोक पाने में आज भी असमर्थ हैं। आए दिन अखबारों में भूख से मौत की खबरें छपती हैं, लेकिन संवेदनहीनता इतनी कि ये खबरें अखबार में भी अब प्रमुखता से जगह नहीं बना पा रही हैं। रूटीन की खबरें बन गयीं हैं। अब सरकार या लोगों में कोई खास सनसनी नहीं पैदा करतीं। खैर, बांदा में गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर कर रहे परिवारों की संख्या एक लाख पांच हजार से अधिक है। अगर प्रति परिवार औसत चार सदस्य होंगे तो जिले में अति गरीब लोगों की संख्या चार लाख 20 हजार से अधिक है। यह आंकड़ा भी तीन साल पीछे का है। यह जिला लगातार सूखा झेल रहा है, सरकारी प्रयास कुछ हुआ नहीं यदि मौजूदा संख्या की बात करें तो इसमें बेहिसाब बढ़ोत्तरी हुई है। 2003 में बांदा नगर में 8424, तहसील सदर में 140552 अतर्रा में 97188, बबेरू में 224424 और नरैनी में 1,20800 ऐसे लोग हैं जिनको दोनों वक्त खाना नहीं मिल रहा था। इनके परिवारों में कुपोषित लोगों की संख्या ज्यादा है। स्वाभाविक है कि जब समय पर खाना नहीं मिलेगा तो कुपोषण बढ़ेगा ही।

यह सरकारी आंकड़ा है, जो केन्द्र और राज्य सरकारों को तीन साल पहले भेज दिया गया। आज तक किसी भी सरकार ने अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई। वर्तमान में हालत यह है कि लोग अपने बच्चों को भूख से रोने पर पीटते हैं, ताकि वह थककर सो जाएं। यह पीड़ादायक स्थिति जब रोज रहेगी, तो कोई क्या कर सकता है? नेता आते हैं और आश्वासन देकर चले जाते हैं। कुछ तो वादा भी करके गए, लेकिन कुछ नहीं हुआ।

उत्तर प्रदेश के 51ण्7 फीसदी कुपोषित बच्चों में सर्वाधिक आदिवासियों, झुग्गी झोंपड़ी में रहने वाले परिवारों और दलितों के ही बच्चे होते हैं।

अखबारों में भूख से मौत की खबरें छपती हैं, लेकिन ये खबरें अखबार में भी अब प्रमुखता से जगह नहीं बना पा रही हैं। रूटीन की खबरें बन गयीं हैं, क्योंकि अब सरकार या लोगों में यह खबर कोई खास सनसनी नहीं पैदा करती।

आखिरकार नरैनी तहसील के नहरी गांव के लोगों को इसी साल जुलाई महीने में सरकारी उपेक्षा से तंग आकर सामूहिक आत्महत्या का फैसला कर लिया। अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान के भागवत प्रसाद ने बताया कि गांव वालों का कहना है कि रोज-रोज के घुट घुटकर मरने से बेहतर है कि एक दिन सामूहिक रूप से मौत को गले लगा लिया जाए। भागवत बताते हैं कि इस गांव में दलितों की आबादी सर्वाधिक है। 80 फीसदी लोग भूमिहीन हैं। कोई रोजगार उनके पास है नहीं। सरकारी योजनाएं यहां तक पहुंचती नहीं। यहां की ग्राम प्रधान दलित महिला है, लेकिन दबंगों के डर से गांव में नहीं रह पाती। कोई नियम कानून यहां नहीं चलता। पंचायतों में आरक्षण के कारण दलित महिला प्रधान बनी, लेकिन वास्तव में मनमर्जी दबंगों की ही चलती है। यहां के लोग आजिज आ चुके हैं। पिछले छह महीनों में गरीबी और भूख से पांच मौतें हो चुकी हैं।

इसी गांव का एक युवक सुंदरलाल प्रजापति साहूकारों से आजिज आकर जब फांसी पर झूल गया, उसी समय उसके चचेरे भाई ने उसको देख लिया और उसे जीते जी बचा लिया। सुंदरलाल का पिता भागवत प्रसाद प्रजापति की तंगहाली के कारण पिछले साल मौत हो गयी। सुंदरलाल इंटरमीडिएट का छात्र है। पिता की मौत के बाद दबंग साहूकारों ने उसकी घेराबंदी शुरू कर दी। वह बताता है कि जब स्कूल जाने लगा तो दबंगों ने रास्ते में उसे कई बार घेरा। उसको ताना देते रहे कि पढ़ने के लिए पैसा है, हमारा कर्ज उतारने के लिए पैसा नहीं है। जैसे भी हो हमारा पैसा लौटाओ। धमकी में इन लोगों ने कहा कि पहले उनका पैसा वापस करो तब पढ़ाई करना। आगे की हाल बयां करते करते सुंदरलाल फफक कर रोने लगा। कहा कि दबंगों की डर से पढ़ाई छूट गयी है। कहीं मजदूरी करते हैं तो पैसा देने में आनाकानी की जाती है। भीगी आंखों से अपना पेट दिखाते हुए बोला कई दिनों से खाना नहीं मिला है, भरोसा न हो तो घर में देख लीजिए, एक दाना अनाज नहीं है। घर में

कई जून से चूल्हा नहीं जल रहा है। अपने चचेरे भाई के साथ ईंट पाथने इलाहाबाद भी गया, लेकिन बारिश हो जाने के कारण वहां भी काम नहीं मिला। अब मैं क्या करूं समझ में नहीं आ रहा है। दरअसल नरैनी के राजकुमार इंटर कालेज का छात्र सुंदरलाल हर ओर से टूटा हुआ नजर आ रहा था। उसके पिता ने किसान क्रेडिट कार्ड से 22 हजार और कोआपरेटिव बैंक से 16 हजार रुपए कर्ज लिया। कोई ठोस व्यापार तो नहीं हुआ, लेकिन घरेलू जरूरतों में यह सारा पैसा खर्च हो गया। इसके बाद वह अपनी बेटियों और गांव के साहूकारों से भी कर्ज लिया। बेटियों का पैसा नहीं लौटाने की ग्लानि में भागवत पड़ा रहता था। वही सदमा वह बरदास्त नहीं कर सका और दुनिया से चल बसा।

सरकारी योजनाओं का मारवौल

प्रदेश में कोई भूखा न रहे, इसके लिए एपीएल, बीपीएल, अन्नपूर्णा और अन्त्योदय योजनाएं चलाई जा रही है। बुंदेलखंड में भी लगभग सभी जिलों में ये सारी योजनाएं चलायी जा रही है। केवल बांदा जिले में 36.8 फीसदी आबादी गरीबी रेखा के नीचे हैं। प्रदेश भर में 28 लाख लोगों को गरीबी रेखा के नीचे वाला 'लाल कार्ड' मिला हुआ है। 35 लाख लोगों को अन्नपूर्णा योजना में शामिल किया गया है। इसके अलावा 24 लाख परिवारों को अन्त्योदय के तहत अनाज उपलब्ध कराने का दावा है। अन्त्योदय योजना के तहत वही लोग आते हैं जो 60 साल से अधिक के होते हैं और निर्धनतम की श्रेणी में आते हैं। इस संख्या में बुंदेलखंड के लोग भी शामिल हैं अर्थात् सबको खाद्यान्न मिल रहा है। अगर यह सच है तो भूख से मौत और रोटी के लिए पलायन को हम झूठ कह सकते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि काम के बदले अनाज वाली योजनाओं में तो आदमी की जगह मशीन से काम लिया जाता है और उसका अनाज अन्न माफियाओं के जरिये खुले बाजार

स्त्रियां सबके भोजन कर लेने के उपरांत बचे-खुचे खाना से ही अपना गुजारा करती हैं। आमतौर पर उसको इस अधिकार से वंचित रखा गया है कि वह पिता, पुत्र, भाई और पति के साथ भोजन करे।

भारत में 33 फीसदी बच्चे जन्म से ही कम वजन के होते हैं। इसके पीछे गर्भावस्था के दौरान उनकी मां का खराब स्वास्थ्य कारण होता है अर्थात् 33 प्रतिशत बच्चे जन्म से ही कुपोषित होते हैं।

में बेच दिया जाता है और उस पैसों को फैक्ट्री मालिकों तो कुछ अपने बैंक खाते के हवाले कर दिया जाता है। जिस दर पर योजना के लिए अनाज आता है, उससे अधिक कीमत बाजार में बेच दिया जाता है।

सरकारी योजनाओं में धांधली का ही नतीजा था कि तत्कालीन जिलाधिकारी मुकेश मेश्राम ने काम के बदले अनाज वाली योजनाओं में लगे टैक्टरों को जिला बदर करने का आदेश दे दिया। छह कोटेदारों के खिलाफ कार्रवाई करते हुए उनके विरूद्ध एफआईआर दर्ज करवाई की गयी। यही नहीं खाद्यान्न के गोदामों पर दो-दो ताले डाल दिए गए। एक ताला गोदाम के इंचार्ज का होता था तो दूसरा जिलाधिकारी का। अगर योजनाओं का सही से क्रियान्वयन हो रहा होता तो यह नौबत क्यों आती। फिर भी कोई दावा नहीं कर सकता कि जनता की अनाज की कालाबाजारी रूक गयी है। सब्सिडी के लोभ में कोटेदार अनाज को बाजार में बेच देते हैं। एक कोटेदार ने तो यहां तक बताया कि सब्सिडी का जो मार्जिन बचता है उसमें आपूर्ति विभाग और ग्राम प्रधान का भी हिस्सा होता है और अकेले कोटेदार का नाम होता है। गरीबों की योजनाओं के अनाज पर सबकी नजर है। लखीमपुर खीरी और बलिया का खाद्यान्न घोटाला करोड़ों का है लेकिन जांच है कि घिसट रही है या रूक गयी है। ऐसे में बुंदेलखंड ही नहीं प्रदेश भर के गरीबों का भला कहां संभव है?

गरीबी के दुष्चक्र से बढ़ता मौतों का सिलसिला

बुंदेलखंड में गरीबी का दुष्चक्र इतना उलझता जा रहा है कि हाल फिलहाल कोई निदान होते नहीं दिख रहा है। विपन्नता आदमी को कहीं का नहीं छोड़ती। अगर पिछले तीन सालों का ही आंकड़ा देखें तो अब तक कम से कम छह दर्जन लोगों ने गरीबी से तंग आकर खुद अपनी जीवन लीला खत्म कर ली है। संसद में बहस के दौरान वित्तमंत्री पी

चिदम्बरम तक बांदा जिले का नाम लेने से नहीं भूले। जनता के इस सबसे बड़ी पंचायत में चर्चा के बाद जब कोई ठोस योजना यहां तक नहीं पहुंची तो अब किसको क्या कहा जा सकता है? वैसे तो वर्ष 2003 के बाद पुलिस फाइल में सैकड़ों आत्महत्याएं दर्ज हैं, लेकिन कम से कम छह दर्जन खुदकुशी गरीबी से त्रस्त होकर की गयी बतायी गयी है।

वर्ष 2003 में 47, 2004 में 19, 2005 में 12 और इस वर्ष अब तक दो लोगों द्वारा गरीबी से त्रस्त होकर खुदकुशी करना पुलिस फाइल में दर्ज है। वैसे कुल आत्महत्याओं पर गौर करें तो वर्ष 2003 में 109, 2004 में 160, 2005 में 202 और इस साल अप्रैल महीने तक 57 लोगों द्वारा खुदकुशी की गयी है। यह आंकड़ा अपने आप में दिल दिमाग को झकझोर दे रहा है। यह संख्या केवल एक जिले की है। आत्महंता लोगों की इस संख्या का समाजशास्त्री विश्लेषण बहुत जरूरी है। मानवाधिकारवादी और पेशे से अध्यापक अखिलेश सिन्हा बताते हैं कि ये आंकड़े चौंकाने वाले हैं। पुलिस आत्महत्याओं के आंकड़ों में आमतौर पर गृह कलह, बेरोजगारी और प्रेम प्रसंग दर्ज करती है। गरीबी और दुराचरण से होने वाली आत्महत्याओं को दबा दिया जाता है। वस्तुतः पुलिस भी ऐसे मामलों को दर्ज करने से बचती है। मात्र तीन सालों में 518 खुदकुशी के मामले तो कुछ और तथ्यों की ओर इशारा करते हैं। अकेले बांदा जिले का यह आंकड़ा चौकाने वाला है। यहां के आर्थिक हालात पर गौर करना बहुत जरूरी है। विदर्भ में जो आत्महत्याओं की निरंतरता बनी हुई है उसके पीछे तो खेती चौपट होना, कर्ज और गरीबी ही तो है। कमोवेश बुंदेलखंड की स्थिति भी तो ऐसी ही है। लगातार सूखा, सरकारी प्रयास शून्य और जनप्रतिनिधियों की संवेदनहीनता ही इसके कारण दिखते हैं। केवल योजनाओं की घोषणा से तो काम चलता नहीं। जमीनी स्तर पर उसका कितना कार्यान्वयन हो रहा है यह गौर करने वाली बातें हैं। बांदा में सालाना 31 करोड़ से ऊपर रुपए रोजगार के लिए आता है। लेकिन ठेकेदार

बुंदेलखंड में बहुलांश किशोर कन्याएं रक्त अल्पता की शिकार हैं। कारण है गरीबी और गरीबी से उपजा कुपोषण।

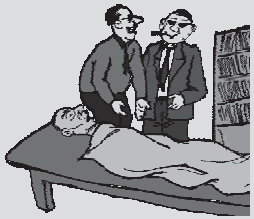

आदमी से काम न कराकर मशीन से कराते हैं। मिट्टी खुदाई का काम पंजाब और हरियाणा से आये ट्रैक्टर करते हैं अगर काम मिलता तो बुंदेलखंड से इतने बड़े पैमाने पर पलायन क्यों होता।

पलायन

इस साल अब तक अकेले बुन्देलखण्ड विशेषकर पाठा क्षेत्र से कम से कम 1.5 लाख किसान पलायन कर चुके हैं। जिस गति से यहां से पलायन होता है, शायद देश के किसी हिस्से से इतनी बड़ी तादाद में लोग दूसरे राज्यों में नहीं जाते। पलायन का जो राष्ट्रीय औसत है उसके तीन गुना लोग बुंदेलखंड से पलायन करते हैं। केवल पाठा क्षेत्र के जिलों को ही देखें तो इस वर्ष अब तक बांदा से 48000, हमीरपुर से 35000, महोबा से 40000 और चित्रकूट से 15000 लोगों का पलायन हो चुका है। इसमें दलित, आदिवासी, छोटे, सीमांत और मझोले किसान शामिल हैं।

अधिसंख्य परिवारों में स्त्री श्रम के चलते ही बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों को भोजन मिलता है, कपड़े मिलते हैं, उन्हें पनाह मिलता है और इस निर्मम समाज में उनके अंदर जीजीविशा पैदा होती है।

विजय, स्वामीदीन और हल्के के घर जिस दिन चूल्हा जल जाता है, वह दिन इन परिवारों के लिए त्यौहार से कम नहीं होता। लेकिन तीज-त्यौहार सालभर तो होता नहीं, महीने-छह महीने पर होता है। बोड़ेपुरवा गांव में ऐसे तमाम परिवार हैं जहां इस कदर गरीबी है कि बड़ों की तो छोड़िए बच्चे भी खाने के लिए तरसते हैं जिसके घर खाना बनने पर त्यौहार का माहौल होता है, उसके लिए होली-दीवाली का क्या मतलब। कपड़ा और मकान के बारे में इनके लिए सोचना भी सपने सरीखा है। यहां कुछ परिवार ऐसे भी हैं जिनके घर टीबी के मरीज हैं। सरकार तो दावा करती है कि इस तरह की व्याधियों का देश निकाला हो चुका है। लेकिन उनको कौन बताए कि बोड़ेपुरवा में क्षयरोगियों की भरमार है। देवा का परिवार गांव से पलायन कर गया है। अभी कई परिवार दूसरे राज्यों में जाकर रोटी का

इंतजाम करने के लिए तैयार बैठे हैं। आश्चर्य तो तब होता है, जब इसके बारे में सरकारी मकहमे से जानकारी मांगी जाती है। नरैनी के एसडीएम केबी अग्रवाल से जब पूछा कि प्रशासन बोड़ेपुरवा के लोगों के लिए क्या कर रहा है, तो उनका जवाब था-उन्हें इस बारे में कोई जानकारी नहीं है। हां अगर पलायन की बात आ रही है तो इसकी तहकीकात की जाएगी।

बुंदेलखंड की सबसे बड़ी त्रासदी यह भी है कि लोग भूख और गरीबी से बेजार होकर अपना गांव छोड़कर दूसरे प्रदेशों में पलायन कर जा रहे हैं। साल के 8 या 9 महीने उनका वहीं बीत रहा है। साल दर साल पलायन करने वालों की संख्या बेतहाशा बढ़ रही है। पिछले दिनों एक-एक महीने में पचास-पचास हजार लोग पंजाब, दिल्ली और राजस्थान चले गए। दलितों और आदिवासियों के गांवों में वीरानी छायी हुई है। गांव का गांव पलायन कर रहा है। लेकिन प्रशासन को इसका भान तक नहीं है। पल्स पोलियो अभियान के बाद जो तथ्य सामने आये हैं वह चौंकाने वाले हैं। इस सरकारी अभियान से खुलासा हुआ कि पिछले तीन महीनों में बांदा जिले के ढाई हजार परिवार पलायन कर गये हैं। लेकिन प्रशासनिक अफसर का कहना है कि उसे इसकी जानकारी नहीं है।

जिस तेजी से लोगों का बुंदेलखंड से पलायन हो रहा है, वह चौंकाने वाला है। पल्स पोलियो अभियान शुरू करने से पहले गांव-गांव में बच्चों की संख्या गिनी जाती है। क्योंकि उसी के अनुपात में पोलियो खुराक मंगाई जाती है। इस साल फरवरी महीने में जब बच्चों का पता करने स्वास्थ्य विभाग का अभियान दल गांवों में गया तो केवल बांदा जिले में उसको 11350 घरों में ताला लटका मिला। मतलब परिवार का परिवार गांव घर छोड़कर रोजी रोटी के जुगाड़ में दूसरे राज्यों में चला गया है। अगर हम प्रति परिवार औसत पांच लोगों

खेती के उपकरणों के प्रयोग की महिलाओं को मनाही है। मसलन वे हल नहीं चला सकतीं, ट्रैक्टर से खेत नहीं जोत सकतीं। लिहाजा हाथ से होने वाले लगभग सभी कृषि कार्य महिलाओं को दे दिया गया है।

बुंदेलखंड में जंगल का बहुतायत होने के कारण जंगल उत्पादों पर आधारित लघु उद्योगों में आदिवासी महिलाओं का 51 फीसदी श्रम लगा है। डलिया, रस्सी और झाड़ू बनाना, दस्तकारी और घर के काम में आने वाले छोटे–मोटे वस्तुओं को बनाने का काम भी महिलाएं करती हैं।

का भी लें तो इस साल के फरवरी महीने तक 56750 लोगों का पलायन हो चुका था। फिर जब अप्रैल महीने में पोलियो दल पता करने निकला तो उसको तेरह हजार सात सौ दस घरों पर ताला लटका मिला। अर्थात् पलायन करने वाले परिवारों में 2351 का और इजाफा हो गया। मात्र दो महीने के भीतर 11755 लोग केवल बांदा से पलायन कर गए। पलायन के एक फौरी नुकसान को भी देखा जाए तो इन परिवारों के बच्चे पोलियो ड्राप पीने से वंचित रह गये। चिकित्सा विभाग के आंकड़ों को ही देखें तो फरवरी महीने में 6395 उन बच्चों को पोलियो की खुराक नहीं दी जा सकी जिनके मां बाप उनको लेकर दूसरे राज्यों में पलायन कर गये हैं।

महोबा जिले के स्थानीय पत्रकार ने बताया कि यहां से भी भारी संख्या में लोगों का पलायन हो रहा है। दिल्ली और पंजाब की ओर जाने वाली ट्रेनें और बसें ठसाठस भरी रहती हैं। इस पलायन के पीछे कारण यहां उद्योग धंधों का नहीं होना है। उद्योग के नाम पर ले देकर यहां महोबा जिले का कबरई क्षेत्र, चित्रकूट जिले का भरतपुर, शिवरामपुर, बरगड एवं मानिकपुर क्षेत्र, ललितपुर जिले का जखौरा, मढ़ावरा, बिरघा एवं हरौनी क्षेत्र तथा झांसी जिले के बड़ा गाँव एवं अन्य में स्थापित स्टोन क्रेसर हैं। लेकिन यहां भी स्थानीय लोगों को काम नहीं मिलता। वहां काम करने वाले सभी मजदूर बाहरी हैं। उद्योग स्थापित करने के लिए यहां के जनप्रतिनिधियों द्वारा कोई ठोस पहल नहीं हुई। पिछले कई सालों से लगातार सूखे ने लोगों की कमर तोड़ दी है। उनके पास जीवीकोपार्जन का एकमात्र उपाय पलायन ही तो बचता है।

ग्राम पंचायत बछौन का एक पुरवा है बेहटा। यहां आदिवासियों की आबादी है। यहां से भी लोगों का पलायन हो चुका है। बेहटा में जो लोग बच गये हैं वे भी अपना गांव घर छोड़ने

की तैयारी कर रहे हैं। कारण यह है कि इस गांव में भुखमरी के हालात पैदा हो गये हैं। पलायन की तैयारी कर चुके झल्लू, नन्नू, सूरजदीन, रामसिंह, उदल, मोहन और राकेश ने बताया कि सरकार की ओर से यहां जो काम हो रहे हैं उसमें हम लोगों को काम करने से मना कर दिया गया। ग्राम पंचायत देवचरी से कंघोली तक सड़क का काम चल रहा है। हम लोग वहां काम मांगने गए थे। काफी मन्नतें भी कीं, लेकिन ठेकेदार और सेक्रेट्री ने हमें दुत्कार कर भगा दिया।

क्षेत्र में जो काम है, उसे मजदूरों से न कराकर मशीनों के जरिये कराया जा रहा है। फर्जी बिल बाउचर बनाकर पेमेंट (भुगतान) करा लिया जा रहा है। रोजगार गारंटी योजना यहां ऐसे ही चल रही है। देवचरी से कंधौली संपर्क मार्ग की लागत 13 लाख 21 हजार है। इसमें ग्रामीणों को ही काम मिलना चाहिए, लेकिन जल्दी-जल्दी भुगतान के चक्कर में ठेकेदार बाहर से ट्रैक्टर मंगाकर काम करा रहा है। शायद बेहटा जैसे गांव के लिए ही काम के बदले अनाज योजना को लागू किया गया है। तमाम कार्य इस मद में कराये जा चुके हैं, लेकिन लोगों का पलायन थम नहीं रहा है। इससे पता चलता है कि इन योजनाओं में किस कदर भ्रष्टाचार घुसपैठ बना चुका है। सूरजदीन का कहना है कि पड़ोसी गांव में जॉब कार्ड तो बंट गये हैं, लेकिन बेहटा में आज तक जॉब कार्ड नहीं दिया गया है। कार्ड के आधार पर काम करने की गारंटी का हक आखिर किस आधार पर जतायी जाये।

रोजगार गारंटी योजना :

ऐसा भी नहीं कि पलायन करने वालों में सभी निरक्षर हैं। पढ़े लिखे लोग भी उसी जमात में शामिल हैं। बांदा जिले के विसंडा गांव के कोदाराम रैदास बीए और जगमोहन रैदास एमए पास है। दोनों पंजाब में ईंट भट्टों पर मजदूरी के लिए पलायन का मन बना चुके हैं।

कुपोषित बच्चों के जीवन पर ग्रहण जन्म के समय ही लग जाता है। वे अगर शैशवावस्था में बच भी गए तो शेष जीवन में दुर्बलता और काम करने तथा कमाने की अल्पक्षमता के शिकार रहते हैं।

कई बार तो ये दूसरों राज्यों में काम के लिए जाकर आ भी चुके हैं। कोदाराम और जगमोहन ने बताया कि नौकरी के लिए बहुत प्रयास किया पर नहीं मिली। चपरासी के लिए एक लाख रुपए तक की घूस मांगी गयी। इतना पैसा हम कहां से लायें। उनको अपनी पढ़ाई-लिखाई पर दुख होता है। गांव के लोगों के साथ काम करने में भी अड़चनें आती हैं। पढ़ाई में एक लंबा समय और मां बाप की पसीने की कमाई बहा सो अलग। आरक्षण को ये ढकोसला बताते हैं। इनका कहना है कि आरक्षण का लाभ भी उन लोगों को मिलता है जो सक्षम हैं। गरीबों को कौन पूछता है। अगर आरक्षण से ही रोजगार मिल जाता तो हम लोगों से चपरासी के लिए एक लाख रुपए की घूस क्यों मांगी जाती। हमारे पास घूस देने के लिए पैसा नहीं है। इसलिए पढ़ लिखकर मजदूरी करने के लिए अभिशप्त हैं।

कुपोषित बच्चे की लंबाई अपने उम्र के बच्चों से कम होती है। उसमें से अधिसंख्य रोग और मंदबुद्धि के शिकार हो जाते हैं।

दलितों और आदिवासियों के बीच काम करने वाले अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान के भागवत प्रसाद बताते हैं कि पिछले कई सालों से बुंदेलखंड से लोग पलायन कर रहे हैं। दलितों और आदिवासियों की बस्ती तो कभी-कभी वीरान हो जाती है। गांव का गांव दूसरे राज्यों में काम की तलाश में पलायन कर जाता है। हालांकि वे यह भी कहते हैं कि रोजगार के लिए दूसरे राज्यों में जाने वालों में केवल दलित और आदिवासी ही नहीं होते। अन्य जातियों के लोग यहां तक कि पढ़े लिखे युवक तक मजदूरी के लिए गांव छोड़कर चले जाते हैं।

पलायन यहां की मजबूरी है। सूखा, बेकारी और रोजगार के अवसर कम होने के कारण निम्न आय वर्ग या छोटे मोटे काश्तकारों को गांव घर छोड़कर जाना पड़ता है। सामाजिक कारणों से एक फर्क देखा जाता है वह यह कि दलित आदिवासी पूरे परिवार के साथ पलायन करते हैं। तो ऊंची जातियों के पुरूष भी रोजगार की तलाश में दूसरे राज्यों में

जाते हैं। बाहर ऊंच नीच का भेद मिट जाता है। सब एक साथ काम करते हैं और एक साथ खाते पीते हैं। फिर गांव के नजदीक आते ही अपने परंपरागत रहन-सहन में आ जाते हैं।

प्रतिवर्ष हो रहा भारी तादाद में पलायन कुछ बस मालिकों के लिए वरदान साबित हो रहा है। उनकी अच्छी खासी कमाई भी हो जा रही है। हालांकि अब धीरे-धीरे यह एक व्यवसाय का रूप लेता जा रहा है। बाहरी राज्यों में काम दिलाने के नाम पर इन असहाय लोगों के साथ ठगी भी की जा रही है। मजदूरों के ठेकेदार पैदा हो गये हैं। जो दूसरे राज्यों के ईंट भट्टों को मजदूर आपूर्ति करते हैं। मजदूरी में कुछ प्रतिशत अपना हिस्सा तय करके इन्हें ले जाते हैं। कभी-कभी तो मजदूरों की कई कई दिनों की मजदूरी भी लेकर चंपत हो जाते हैं। हर ओर इन गरीबों की ही लूट खसोट होती है। गरीब का किसी पर सहज भरोसा अक्सर उसको संकट में डालता रहता है। नेता साहूकार, दलाल और सरकार उनको एक जैसे लगते हैं।

गरीबी रेखा का तिलिस्म

आजाद भारत की सरकार ने सबसे पहले वर्ष 1957 में 'निर्धनता' को परिभाषित करते हुए उस समय 200 रुपए प्रतिमाह से कम आय वाले को गरीबी रेखा के नीचे माना था। मुद्रास्फीति में जैसे-जैसे बढ़ोत्तरी होती गयी मासिक आय का पैमाना बदलता गया। सरकार ने आखिरी बार दिसंबर 2005 में निर्धनता को परिभाषित किया। उसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 368 रुपए प्रतिमाह और शहरी क्षेत्र में 559 रुपए प्रतिमाह से कम आमदनी वाले को गरीबी रेखा के नीचे रखा गया।

बांदा में 1340, तहसील सदर क्षेत्र में 24024, अर्तरा में 21388, बबेरू में 14628 और नरैनी में 15020 लोग अति गरीब हैं।

2003 में बांदा नगर में 8424, तहसील सदर में 140552 अतर्रा में 97188, बबेरू में 224424 और नरैनी में 1ए20800 ऐसे लोग हैं जिनको दोनों वक्त खाना नहीं मिल रहा था।

गरीबी रेखा के नीचे के लोगों के लिए केन्द्र सरकार द्वारा तय किये गये इस मानक से कई अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री असहमत हैं। उनका मानना है कि निर्धनता का यह पैमाना महंगाई और मुद्रास्फीति को देखते हुए कहीं से तर्कसंगत नहीं है। यह पैमाना तो गरीबी की रेखा से नीचे की रेखा को निर्धारित करता है। गरीबी रेखा के मौजूदा पैमाने में बदलाव के लिए देश में एक बहस चल रही है, तमाम शोध और सर्वे रिपोर्ट के आलोक में इस पर पुनर्विचार की बात हो रही है।

गरीबी का अंतरराष्ट्रीय मानक

गरीबी के अंतरराष्ट्रीय परिभाषा के मुताबिक वे सारे लोग, जिनका प्रतिदिन का खर्च एक डालर से कम है वह 'गरीब' की श्रेणी में आते हैं।

इस मानक को अगर भारत के संदर्भ में देखें तो 'गरीब' की श्रेणी से बचने के लिए हर व्यक्ति को प्रतिमाह 30 डालर, एक डालर सैंतालिस रुपए के बराबर यानी 1410 रुपए खर्च करना जरूरी है। हर महीने 1410 रुपए से कम खर्च करने वाला भारतीय 'गरीब' है।

राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण (एनएसएस) के अनुसार ग्रामीण भारत में अधिकतम व्यय करने वाला समूह वह है जिनमें 950 रुपए या उससे अधिक का खर्च हर व्यक्ति प्रतिमाह करता है। इस समूह में केवल पांच प्रतिशत ग्रामीण आबादी आती है। अर्थात् भारत की 95 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण आबादी अंतरराष्ट्रीय मानक के मुताबिक गरीबी रेखा के नीचे जी रही है। हालांकि एनएसएस का सर्वेक्षण वर्ष 2000 का है, लेकिन गरीबों के लिए पिछले पांच वर्षों में कोई जादुई छड़ी नहीं घुमाई गयी है, इसलिए गरीबी की सांख्यिकी

गणनाओं को समझने का यह एक संदर्भ बिन्दु है।

राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी का आकलन देश की कुल जमा गरीबी के संदर्भ में किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय मानक के मुताबिक तो सारा देश ही गरीब है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर तय किये गए मानक भी तो इस तस्वीर को चमकदार नहीं बना पाते। देश में गरीबी रेखा निर्धारित करने के लिए एनएसएस के उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण में उस समूह को आधार बनाया जाता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने भोजन पर न्यूनतम ऊर्जा प्राप्त करने लायक खर्च कर सके। न्यूनतम ऊर्जा की जरूरत का मानदंड है–गांवों में प्रति व्यक्ति हर दिन 2400 किलो कैलोरी और शहरों में 2100 किलो कैलोरी भोजन से प्राप्त करें। इस व्यय समूह का प्रति व्यक्ति प्रतिमाह कुल खर्च गरीबी की रेखा निर्धारित करता है।

वैसे यह पैमाना भी पर्याप्त नहीं है। न्यूनतम ऊर्जा पैमाने में यह भी देखा जाना चाहिए कि लोगों को संतुलित आहार प्रोटीन आदि से युक्त मिल रहा है या नहीं। फिलहाल हम कैलोरी वाले पैमाने को ही आधार मान लेते हैं।

पिछले साल ही केन्द्र सरकार द्वारा बजट पूर्व जारी किए गए आर्थिक सर्वे में यह दावा किया गया था कि देश में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की तादाद घट रही है और उसका प्रतिशत भी घट रहा है। उस रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 1977-78 में 51.3 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे थे। 1993-94 में यह आंकड़ा घटकर 36 प्रतिशत हो गया और वर्ष 1999-2000 आते–आते 26.1 फीसदी लोग ही गरीबी रेखा के नीचे रह गए। सरकार के दावे और व्यवहार के आंकड़ों में भारी अंतर है, क्योंकि जिन सूचकांकों और मानदंडों पर यह आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं, वे पूरी तरह त्रुटिपूर्ण हैं। अगर ऐसा नहीं है तो उड़ीसा, राजस्थान, महाराष्ट्र के बाद उत्तर प्रदेश में भी भूख से लोगों की मौतें क्यों हो

नरही गांव की ग्राम प्रधान दलित महिला है, लेकिन दबंगों के डर से गांव में नहीं रह पाती। कोई नियम कानून यहां नहीं चलता। पंचायतों में आरक्षण के कारण दलित महिला प्रधान बनी, लेकिन वास्तव में मनमर्जी दबंगों की ही चलती है।

रही हैं? संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट भी कहती है कि दुनिया में जितने लोग भूख, कुपोषण, अर्धपोषण और दरिद्रता की मार झेल रहे हैं उनमें 29 प्रतिशत लोग भारत वर्ष के हैं।

भारत में वर्ष 1990-92 के दौरान 25 फीसदी जनसंख्या अर्धपोषित थी। यह अनुपात घटकर 1995-97 और 2000-01 में 21 प्रतिशत हो गया, लेकिन वर्ष 1990-92 के 21 करोड+ 58 लाख लोगों की तुलना में 1995-97 में 20 करोड़ 30 लाख और 2000-02 में 22 करोड़ 33 लाख लोग अर्धपोषण के शिकार रहे। खाद्य और कृषि संगठन के इस आंकड़े की तस्दीक एशियाई विकास बैंक ने भी की। उसने एडमिनिस्ट्रेटिव व स्टॉफ कालेज, हैदराबाद के सहयोग से एक सर्वेक्षण कराया है। इस सर्वेक्षण के अनुसार हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कुपोषण और शक्तिहीनता का शिकार है। 75 प्रतिशत से अधिक गर्भवती महिलाएं तथा तरुणियां और तीन वर्ष की आयु से कम बच्चे कुपोषण एवं शारीरिक तथा मानसिक कमजोरी से पीड़ित हैं। इस सर्वे से यह तथ्य उजागर हुआ है कि वर्ष 1993 में घोषित नेशनल न्यूट्रिशन पॉलिसी के पूर्णतया कार्यान्वयन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। मौजूदा पंचवर्षीय योजना में भी कुपोषण के निराकरण के लिए कोई समयबद्ध कार्यक्रम नहीं पेश किया गया है।

नेशनल सैम्पल सर्वे के अनुसार देश के 30 फीसदी निर्धनतम लोगों को तो 1600 कैलोरी या उससे भी बहुत कम भोजन मिलता है। 1999-2000 में बड़ी चतुराई से केन्द्र सरकार ने 226 रुपए की मासिक आमदनी के पुराने पैमाने को गरीबी रेखा का पैमाना मान लिया था, जबकि तब गरीबी रेखा का पैमाना 600 रुपए से कम नहीं होना चाहिए था।

अन्त्योदय योजना के तहत वही लोग आते हैं जो 60 साल से अधिक के होते हैं और निर्धनतम की श्रेणी में आते हैं।

क्या हो गरीबी रेखा का पैमाना

दिल्ली की गैर सरकारी नीतिगत अनुसंधान संगठन-सेंटर फॉर पालिसी अल्टरनेटिव्स ने गरीबी रेखा के मौजूदा मानक में बदलाव लाने का सुझाव दिया है। इसके अनुसार औसतन 840 रुपए प्रतिमाह आमदनी से कम आय वाले परिवारों को निर्धनता की रेखा से नीचे माना जाना चाहिए। अर्थशास्त्री मोहन गुरुस्वामी और रोनाल्ड जोसफ अब्राहम ने-'गरीबी की पुनर्परिभाषा - नये भारत के लिए नयी गरीबी रेखा' शीर्षक से अपनी ताजा रिपोर्ट में लिखा है कि भारत के योजना आयोग ने गरीबी को बहुत सीमित रूप से परिभाषित किया है। आयोग द्वारा निर्धारित किये गए गरीबी रेखा का पैमाना केवल भोजन ऊर्जा-कैलोरी पर आधारित है। इस तरह यह केवल क्षुधा पूर्ति भूख की तृप्ति पर ध्यान देती है। इसको गरीबी रेखा की बजाय भुखमरी रेखा कहना ज्यादा उचित है।

श्री गुरुस्वामी और श्री अब्राहम कहते हैं कि जब सार्वजनिक सेवा की प्राप्ति, न्यूनतम जीवन स्तर और अन्य आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं को शामिल करते हुए आपके पास एक अधिक विस्तृत परिभाषा हो तो हमे पता चलेगा कि वास्तव में भारत की बहुसंख्य आबादी अब भी निर्धन नहीं निर्धनतम है। अगर गरीबी रेखा का मानक रिपोर्ट में तय किये गए 840 रुपए की मासिक आय को मानें तो भारत की 69 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे आ जाएगी। वैसे योजना आयोग के परिभाषा के अनुसार वर्ष 2004 में आबादी का 23.6 फीसदी हिस्सा, तकरीबन 25 करोड़ से ऊपर लोग गरीबी की रेखा के नीचे थे।

अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों की मानें तो वर्ष 2020 तक विकसित भारत के सपने को वास्तविकता प्रदान करने के लिए 'निर्धनता' की एक उचित और व्यापक परिभाषा

गरीबों की योजनाओं के अनाज पर सबकी नजर है। लखीमपुर खीरी और बलिया का खाद्यान्न घोटाला करोड़ों का है लेकिन जांच है कि घिसट रही है या रुक गयी है। ऐसे में बुंदेलखंड ही नहीं प्रदेश भर के गरीबों का भला कहां संभव है।

बांदा में सालाना 31 करोड़ से ऊपर रुपए रोजगार के लिए आता है। लेकिन ठेकेदार आदमी से काम न कराकर मशीन से कराते हैं। मिट्टी खुदाई का काम पंजाब और हरियाणा से आये ट्रैक्टर करते हैं अगर काम मिलता तो बुंदेलखंड से इतने बड़े पैमाने पर पलायन क्यों होता।

आवश्यक है। इस परिभाषा में यह सुनिश्चित किया जाना जरूरी है कि प्रत्येक नागरिक को न केवल प्रतिदिन दोनों समय संतुलित भोजन मिले, बल्कि उसके पास सम्मान के साथ एक साधारण आरामदायक जीवन यापन के लिए सुख साधन भी हों। इसमें न्यूनतम स्वास्थ्य सुविधा और बच्चों की पढ़ाई लिखाई की व्यवस्था भी शामिल है।

अगर हम गौर करें तो मौजूदा संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार का राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम भी गरीबी उन्मूलन नहीं, बल्कि भूख उन्मूलन पर ही ध्यान देता है। यही कारण है कि इस कार्यक्रम में एक परिवार के एक सदस्य को 60 रुपए दिहाड़ी का कार्य देने का आश्वासन दिया गया है। 60 रुपए प्रतिदिन मजदूरी का अर्थ है एक परिवार के एक सदस्य को पूरे महीने में 1800 रुपए का काम। इस तरह इससे पांच सदस्यों के परिवार के लिए औसतन 360 रुपए प्रतिमाह की व्यवस्था हो सकती है और यह आमदनी निर्धनता रेखा के मौजूदा सरकारी पैमाने के अनुसार उसे गरीबी रेखा के ऊपर पहुंचा देगी।

सीमित और संकुचित पैमाना

गरीबी की रेखा का वर्तमान सरकारी पैमाना निःसंदेह बहुत ही सीमित और संकुचित है। अगर सरकारी आंकड़ों के मुताबिक गरीबी रेखा के नीचे वालों की संख्या देखें तो उनको गरीबी रेखा से ऊपर पहुंचाने के लिए सिर्फ 57 हजार करोड़ की आवश्यकता होगी। यह राशि देश की नौकरशाही के संचालन पर खर्च होने वाली राशि की एक चौथाई, केन्द्र और राज्यों के संयुक्त बजट की 6.7 प्रतिशत और सकल घरेलू विकास दर की 2.5 फीसदी है। अगर इतनी राशि से ही गरीबी की रेखा मिटायी जा सकती है तो शायद आज यह रेखा

रहती ही क्यों? सरकारी योजनाकारों की समझ और व्यवहारिक ज्ञान पर कुछ भी कहना ठीक नहीं, लेकिन मौजूदा गरीबी रेखा का मानक तो यही कहता है कि इन योजनाकारों की समझ पर तरस खाने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं हैं। लगता है देश में भूख से हो रही मौतों को अनचाहे सरकारी स्वीकृति मिल रही है और उसी के आलोक में योजनाएं बन रही हैं।

गरीबी रेखा का पैमाना 840 रुपए क्यों ?

वर्तमान कीमतों पर पौष्टिक आहार के लिए प्रति व्यक्ति औसतन 573 रुपए की जरूरत है। इसके अलावा स्वास्थ्य-30 रुपए, कपड़ा-39 रुपए, ऊर्जा-55 रुपए और अन्य विविध खर्चों के लिए न्यूनतम 164 रुपए की आवश्यकता को जोड़कर देश में गरीबी रेखा 840 रुपए निर्धारित होनी चाहिए। इस प्रकार पांच सदस्यों वाले परिवार को गरीबी से ऊपर मानने के लिए उस परिवार की न्यूनतम आय 4200 रुपए प्रतिमाह होनी चाहिए। ऐसे परिवार के पास सीवेज व्यवस्था से जुड़े शौचालय की सुविधा उसके घर में न हो तो भी उसके घर से 10-15 मीटर के दायरे में उपलब्ध होनी चाहिए, तब कहीं जाकर ऐसा परिवार गरीबी की रेखा लांघ पाएगा।

पलायन का जो राष्ट्रीय औसत है उसके तीन गुना लोग बुंदेलखंड से पलायन करते हैं। केवल पाठा क्षेत्र के जिलों को ही देखें तो इस वर्ष अब तक बांदा से 48000, हमीरपुर से 35000, महोबा से 40000 और चित्रकूट से 15000 लोगों का पलायन हो चुका है।

दलितों और आदिवासियों के गांवों में वीरानी छायी हुई है। गांव का गांव पलायन कर रहा है। लेकिन प्रशासन को इसका भान तक नहीं है।

कर्ज का मकड़जाल

आसरा टूटा तो जिंदगी की भी डोर टूट गई

बांदा जिले का एक गांव है बड़ागांव। जो कुछ वहां हमने देखा और सुना, कहीं से वह गांव बड़ा नहीं लगा। हर ओर उपेक्षा, निराशा और उदासी ही दिखी इस गांव में। अभी हाल की ही बात है, वहां रहने वाले रमाशंकर सिंह पड़ोस के एक पीसीओ से फतेहपुर में अपनी बेटी को फोन कर रहे थे। शाम का वक्त था। टेलीफोन लाइनें व्यस्त थीं। बार-बार मिलाने पर भी फोन नहीं मिल रहा था। रमाशंकर सिंह की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। बेटी उनके लिए आखिरी उम्मीद थी। उनके दिमाग में तमाम उधेड़बुन चल रही थी, तभी फोन दूसरी तरफ मिल गया। फोन मिलते ही औपचारिकताओं का ख्याल किये बिना रमाशंकर सिंह बोल पड़े। बेटी मैं बहुत परेशान हूं, बैंक का कर्ज उतारना है। बहुत सता रहे हैं सब। कुछ पैसों का सहयोग कर दो, तुम्हारा पाई-पाई मैं लौटा दूंगा। 65 साल के बूढ़े बाप की याचना सुन बेटी रोने लगी। क्योंकि उसकी भी माली हालत ऐसी नहीं थी कि वह अपने पिता का सहयोग कर सके। बेटी रोती रही कुछ बोल नहीं पा रही थी। रमाशंकर सिंह भी समझ गये। एक आखिरी आसरा बचा था। वह भी काम नहीं आया। बैंक मैनेजर की धमकी और बेटी के आगे हाथ फैलाने की आत्मग्लानि का अंत रमाशंकर सिंह की खुदकुशी के रूप में हुआ। 6 बेटियों और चार बेटों के पिता ने 25 जुलाई की रात आत्महत्या कर ली।

बेटा सुरेन्द्र ने बताया, पिताजी ने सितंबर 2003 में किसान क्रेडिट कार्ड पर तुलसी ग्रामीण बैंक की चंदवारा शाखा से 40 हजार रुपए कर्ज लिया था। वैसे तो हमारे पास 35 बीघा जमीन है, लेकिन उसमें खेती लायक मात्र छह बीघा है। पिछले कई सालों से पड़ रहे सूखे

के कारण घर की जरुरत भर का अनाज भी पैदा नहीं हो रहा है। पिताजी ने खेती वाले 8 बीघा जमीन को ही कर्ज के एवज में बंधक रख दी थी। हमारे 3 भाई सूरत और मुम्बई में काम करने गए हैं और मैं गांव पर ही रहकर पिताजी का सहयोग करता हूं।

पिताजी द्वारा लिये गए कर्ज पर १३१६७ रुपए ब्याज भी चढ़ गया था। कुल देनदारी 53167 रुपए की हो गयी थी। बैंक वाले अक्सर आकर पिताजी को तंग करते थे। 22 जुलाई को बैंक के मैनेजर आए। पिताजी को धमकी दी कि बैंक का पैसा नहीं दोगे तो पुलिस बुलाकर जेल में डलवा दूंगा। तब से पिताजी बहुत व्यथित थे। बहन मुन्नी को सहयोग के लिए फोन किया, लेकिन उसने भी अपनी मजबूरी बता दी। आखिरी उम्मीद के खत्म होने के बाद कोई व्यवस्था न होते देख उसी शाम 7 बजे पिताजी फांसी पर झूल गए।

रमाशंकर सिंह के भाई रामबहादुर ने बताया कि बैंक मैनेजर ने सबके सामने भईया को धमकाया। जेल भेजवाने और खेतों की नीलामी कर देने की धमकी दी। भईया को लगा कि पैंसों का इंतजाम हुआ नहीं, जमीन-जायदाद की नीलामी तय है, इसी उधेड़बुन में यह हादसा हुआ।

इस हादसे के बाद तो जिले में भूचाल आ गया। समाजसेवी संस्थाओं और अन्य कई लोग कमिश्नर सुरेशचंद्र शर्मा से मिले। कमिश्नर ने जांच के निर्देश दे दिए। जिलाधिकारी ने एडीएम जीसी पांडेय को जांच के लिए भेजा, लेकिन लंबे इंतजार के बाद जांच का खुलासा नहीं हुआ। अगस्त महीने की 29 तारीख को जब मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव अपनी सरकार के तीन साल पूरा होने पर जश्न मना रहे थे, तब जांच का तथ्य सामने आया। मुलायम सिंह यादव ने कहा कि मेरे शासन में प्रदेश के किसान खुशहाल हैं। बांदा वाली घटना घरेलू मामलों की वजह से हुई थी। यहां एक सवाल है कि क्या तुलसी ग्रामीण बैंक

पलायन की तैयारी कर चुके झल्लू, नन्नू, सूरजदीन, रामसिंह, उदल, मोहन और राकेश ने बताया कि सरकार की ओर से यहां जो काम हो रहे हैं उसमें हम लोगों को काम करने से मना कर दिया गया।

सूरजदीन का कहना है कि पड़ोसी गांव में जॉब कार्ड तो बंट गये हैं, लेकिन बेहटा में आज तक जॉब कार्ड नहीं दिया गया है। कार्ड के आधार पर काम करने की गारंटी का हक आखिर किस आधार पर जतायी जाये।

का मैनेजर फर्जी ऋण का तगादा करता था। अगर रमाशंकर सिंह के ऊपर बैंक का कोई कर्ज नहीं था तो उस मैनेजर पर कोई कार्रवाई क्यों नहीं की गयी जो उनको जेल भेजने और जमीन को नीलाम करने की धमकी देकर आया था।

अकेले रामशंकर सिंह ही बैंक के कर्जदार नहीं थे, बल्कि बड़ागांव के तकरीबन 80 फीसदी लोग बैंकों और साहूकारों के कर्जदार हैं। इसी साल जुलाई महीने में गांव के 20 किसानों के नाम बैंक से आरसी जारी हुई। इन 20 किसानों पर बैंकों का कम से कम 6 लाख रुपया कर्ज है। कुर्की और नीलामी के भय से ये सभी किसान हलकान हैं। करीब 5000 आबादी वाले इस गांव में गरीबी पिछले 5 सालों के दौरान जिस रफ्तार से बढ़ी है वह एक बेहद खतरनाक संकेत है। इस गांव में दो सरकारी नलकूप हैं, लेकिन ये पानी नहीं देते। इनकी नालियां टूटी पड़ी हैं और यह हालात कई वर्षो से है। कोई सरकारी नुमाइंदा इनको देखने तक नहीं आया। इन नलकूपों के लिए तैनात सींचपाल घर बैठे बिना काम के वेतन ले रहे हैं। 1992 में गांव को विद्युतकृत किया गया। उसी साल कुछ महीने बिजली आयी, उसके बाद पिछले 14 सालों से इस गांव के लोग बिजली को तरस रहे हैं। गांव के 10-12 साल तक के बच्चे लोगों से पूछते हैं-ये खंभे किस लिए गड़े हैं, गांव के किसी भी बड़े को बच्चों के इस सवाल का जवाब देते नहीं बनता। ऐसे में सरकारी नलकूपों से सिंचाई की उम्मीद कैसे की जा सकती है। सूखे की मार ने यहां के किसानों को कहीं का नहीं छोड़ा है। आखिर कर्ज की अदायगी हो भी तो कैसे।

एक विडम्बना और है कि छोटे या सीमांत काश्तकार ही बैंकों के कर्जदार नहीं है, 100-100 बीघे जमीन वाले बड़े किसान भी बैंकों के कर्जदार हैं। किसान क्रेडिट कार्ड जब से आया तब से किसानों के लिए बैंकों से कर्ज लेना कुछ आसान हो गया, क्योंकि बैंक और

किसानों के बीच में कड़ी का काम करने वाले दलाल लांच लेकर किसानों को कर्ज दिलवा देते हैं। लांच क्या बला है, इस पर चर्चा हम आगे करेगें। फिलहाल शिव पूजन, गोरे लाल, भैरम प्रसाद, वरदानी, राम सुफल, ब्रजभूषण, जगत नारायण, मलखान सिंह, इस्लाम, विनोद उर्फ बग्गड़, अमर सिंह, राम गोपाल, शांती देवी, टिर्रा, सुखवा, राम गुलाम और शिव पूजन आदि के नाम आरसी कट चुकी है और ये वसूली के भय से भागे-भागे फिर रहे हैं। इन लोगों ने बताया कि बैंक मैनेजर उनको धमका रहा है। हालांकि बैंक मैनेजर का कहना है कि वसूली की सामान्य प्रक्रिया अपनायी जा रही है, धमकाने का आरोप गलत है। बैंक मैनेजर ने कुछ और कर्जदारों के भी नाम गिनाये। सुदर्शन कोरी के नाम बैंक का 21 हजार का कर्ज है। पांच हजार जमा कर चुका है। जगमोहन ने 20 हजार का कर्ज स्वीकृत कराया। नौ हजार निकाल लिए हैं, 10 हजार बैंक में हैं। अब तक मात्र 850 रुपए जमा किए हैं। बच्चू को 20 हजार स्वीकृत हुए, लेकिन मिले सिर्फ 17 हजार। वह सात हजार ही जमा कर पाया। कल्लू चौकीदार को 10 हजार में 8 हजार मिले। अब इन लोगों पर भी गिरफ्तारी और कुर्की, नीलामी की तलवार लटक रही है।

पड़ुई की पीड़ा

रमाशंकर सिंह की घटना बुंदेलखंड में किसी किसान द्वारा खुदकुशी करने की पहली घटना नहीं थी। उससे 20 दिन पहले पड़ुई के किसान किशोरी लाल साहू ने भी कर्ज से परेशान होकर 6 जुलाई को आत्महत्या कर ली थी। लेकिन किशोरी लाल के मामले को भी सरकार कर्ज के कारण की गई आत्महत्या नहीं मानती। तत्कालीन प्रभारी जिलाधिकारी गोपालचंद्र पांडेय ने बताया कि उसने गरीबी और बड़े परिवार की जिम्मेदारियों का ठीक ढंग से नहीं उठा पाने के कारण जान दी। उन्होंने जांच का ब्यौरा कुछ इस प्रकार दिया-किशोरी लाल ढ़े

भागवत कहते हैं रोजगार के लिए दूसरे राज्यों में जाने वालों में केवल दलित और आदिवासी ही नहीं होते। अन्य जातियों के लोग यहां तक कि पढ़े लिखे युवक तक मजदूरी के लिए गांव छोड़कर चले जाते हैं।

हर ओर इन गरीबों की ही लूट खसोट होती है। गरीब का किसी पर सहज भरोसा अक्सर उसको संकट में डालता रहता है। नेता साहूकार, दलाल और सरकार उनको एक जैसे लगते हैं।

साहू की आठ बेटियां हैं, जिनमें चार की शादी कर चुकी हैं। साहू के नाम साढ़े पांच बीघा जमीन है। वह खेती से आमदनी तो करता ही था, इसके अलावा व्यवसाय भी करता था। उसने बैंकों से कर्ज ले रखा था। उसकी पत्नी ने बताया कि परिवार पर कम से कम 50 हजार रुपए का कर्ज है। साहू पारिवारिक जिम्मेदारियों से परेशान रहता था। इसके अलावा एक अन्य प्रकरण को लेकर गृह कलह था, किशोरीलाल ने इन्हीं कारणों से खुदकुशी की।

पडुई के ग्राम प्रधान रामशरण वर्मा सरकारी निष्कर्ष को सिरे से खारिज करते हुए बताते हैं कि किशोरीलाल की आत्महत्या की वजह सिर्फ-सिर्फ कर्ज है। इन्होंने यह भी बताया कि इसी साल जून महीने के आखिर में किशोरी लाल उनके यहां गरीबी रेखा वाला राशन कार्ड बनवाने आया था। प्रधान ने अपने सचिव निरंजन शुक्ला को कार्ड बनाने के लिए कह भी दिया था। इस बीच राशन कार्ड नहीं बन रहे थे, इसलिए किशोरी लाल का कार्ड नहीं बन सका। यहां एक सवाल और उठता है कि अगर खेती और व्यवसाय से किशोरी लाल की अच्छी आमदनी थी तो ग्राम प्रधान का लाल कार्ड बनाने की पैरवी क्यों करता। निश्चित तौर पर किशोरी की माली हालत बहुत खराब थी।

अगर हम किशोरी लाल की आर्थिक स्थिति पर गौर करें तो उसकी अब भी चार बेटियां अवविवाहित हैं। इससे पूर्व अपनी बड़ी चार बेटियों शकुन्तला, सुनीता, गीता और मीता की शादी कर चुका था। वह इनकी शादियों में अपनी ढाई बीघा जमीन भी बेच चुका था। जमीन से मिली कीमत से काम नहीं चला तो उसने बैलगाड़ी के नाम पर यूनियन बैंक से आईआरडीपी योजना के तहत 15 हजार रुपए का कर्ज भी ले लिया। जब इतने से भी बेटियों की शादी में अड़चन आयी तो उसने कई साहूकारों से भी कर्ज ले लिया। किशोरी

लाल की बेवा शोभा बताती है कि बैंक और साहूकारों का कर्ज जस का तस है पता नहीं अब कैसे भरेगा। यूनियन बैंक बांदा के शाखा प्रबन्धक आर सी वर्मा ने बताया कि किशोरी लाल ने 6 नवम्बर 1996 को आईआरडीपी योजना से 15 हजार रुपए का कर्ज लिया। एक साल बाद उसने 21 नवम्बर को 1997 को पॉच हजार रुपया जमा किया। उसके बाद कोई किश्त जमा नहीं किया। इस समय उस पर 9410 रुपए का बकाया है। ऐसे में प्रशासन के जांच में केवल यह पाया जाना कि घरेलू कलह के कारण किशोरी लाल ने आत्महत्या कर ली गले नहीं उतर रहा है। 7 जुलाई को मंडलायुक्त सुरेश चन्द्र शर्मा ने यह तो स्वीकार किया कि किशोरी लाल कर्जदार था और आर्थिक तंगी से जूझ रहा था, लेकिन उनका मानना यह था कि किशोरी लाल की आत्महत्या की तात्कालिक वजह घरेलू विवाद भी है। इसके पक्ष में वह तर्क देते हैं कि कर्ज वसूली को लेकर किशोरी लाल पर कोई दबाव नहीं था।

जिलाधिकारी की मानें तो उसकी पत्नी को विधवा पेंशन स्वीकृत हो गया है। उसके परिवार को अंत्योदय कार्ड जारी कर दिया गया है। एक हजार रुपए की अहेतुक सहायता भी दी गयी है। पारिवारिक लाभ योजना के तहत 10 हजार रुपए स्वीकृत किये जाने की कार्यवाही तेजी पर है। मुख्यमंत्री विवेकाधीन कोष से समुचित धनराशि मंजूर करने के लिए संस्तुति भी भेजी गयी है, ताकि उसकी चार बेटियों की शादी की जा सके। लेकिन जिलाधिकारी की बात अब भी गले नहीं उतर रही है। उनका कहना है कि किशोरीलाल खेती से आमदनी करता था, जिस इलाके में पिछले पांच सालों से मुतवातिर सूखा पड़ रहा हो वहां के 6 बीघे के काश्तकार को आमदनी वाला मानना कहीं से सही नहीं लगता।

चार हजार की आबादी वाले पडुई गांव का भौगोलिक विस्तार 22 सौ बीघा जमीन में है।

निर्धनता के अंतरराष्ट्रीय मानक को अगर भारत के संदर्भ में देखें तो 'गरीब' की श्रेणी से बचने के लिए हर व्यक्ति को प्रतिमाह 30 डालर, एक डालर सैंतालिस रुपए के बराबर यानी 1410 रुपए खर्च करना जरूरी है। हर महीने 1410 रुपए से कम खर्च करने वाला भारतीय 'गरीब' है।

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट भी कहती है कि दुनिया में जितने लोग भूख, कुपोषण, अर्धपोषण और दरिद्रता की मार झेल रहे हैं उनमें 29 प्रतिशत लोग भारत वर्ष के हैं।

किशोरी लाल की घटना इस गांव के लिए पहली घटना नहीं है। इसके पहले भी पांच लोगों ने कर्ज के कारण खुदकुशी कर ली है। अगर आप बंदा जिला मुख्यालय से नारायणी रोड पर करीब 18 किलोमीटर आगे जाएंगे तो वहां से दाहिनी ओर पडुई गांव के लिए सम्पर्क मार्ग जाता है। जिला मुख्यालय से यहां तक की यात्रा बहुत कष्टसाध्य होती है, फिर भी पडुई गांव के कच्चे मार्ग पर आते-आते वहां की स्थिति को देखकर लोग बाग अपने कष्ट को भूल जाते हैं। इस गांव में सर्वाधिक दलितों की आबादी है। इसके बाद यादव, पाल और साहू लोगों के अलावा ब्राह्मणों और ठाकुरों के भी कुछ गिने-चुने परिवार रहते है। यहां जिसके पास 20 से 25 बीघा जमीन है वह गांव का बड़ा काश्तकार है। लेकिन इस गांव में ऐसा कोई नहीं है जिसके ऊपर बैंक या साहूकारों का कर्ज नहीं है। यहां के ग्राम प्रधान रामशरण वर्मा बताते है कि गांव का लगभग हर किसान कर्ज से लदा है और यहां के पांच किसान कर्ज के ही कारण पांच साल के भीतर खुदकुशी कर चुके हैं। उन्होंने बताया कि चार लोगों ने तो खेतों पर ही अपनी जिन्दगी खत्म कर ली। मरने वालो में ज्यादातर लोग युवा थे।

इन हादसों को सिलसिलेवार देखें तो वर्ष 2000 में सात भाइयों में से एक 18 साल के बबली यादव ने गांव के पड़ोस में महुवे के पेंड़ पर लटककर अपनी जान दे दी थी। उसके बीमार पिता सुखलाल पर गांव के साहूकारों का 20-25 हजार रुपया कर्ज चढ़ गया था। इसके अलावा भूमि विकास बैंक से भी 25 हजार का कर्ज ले रखा था। आए दिन वसूली का संत्रास बबली नहीं झेल पा रहा था।

इसके एक साल बाद रघुराज यादव का 18 साल का बेटा बिन्दू भी फांसी पर झूल गया। 10 बीघा जमीन के मालिक उसके पिता पर कुछ साहूकारों का कर्ज था। इसके बाद वर्ष

2004 में राजकिशोर सैनी का 16 साल का बेटा रमाशंकर ने नहर किनारे बाड़े में फांसी लगा ली थी। राजकिशोर पर बैंक का 20 हजार रुपया कर्ज कर्ज था। इस साल जनवरी के ही महीने में 21 साल के बाबू रैदास ने खुदकुशी कर ली थी। इसके पिता जगमोहन भूमिहीन है और परिवार का पेट पालने के लिए पत्तल और दोने बनाते हैं। ग्राम प्रधान ने बताया कि जगमोहन अपने इस धंधे के सिलसिले में कर्ज ले रखा है।

गांव के बुजुर्ग राम कुमार साहू ने बताया कि भले ही इस गांव में आर्थिक तंगी है, लेकिन सब लोग मिलजुल कर रहते है। कभी किसी से कोई झगड़ा नहीं होता। परिवार के भीतर होने वाले झगड़ों के बारे में तो हम बहुत विश्वास के साथ कुछ नहीं कह सकते, लेकिन किसी भी परिवार का झगड़ा आज तक बाहर नहीं आया। हां यह सच है कि गरीबी के कारण कर्ज का बोझ लगभग हर परिवार पर है और आत्महत्याओं के पीछे यही सबसे बड़ा कारण भी है।

पडुई में 90 परिवार आज भी यूनियन बैंक के कर्जदार हैं। गांव में वसूली करने आने वाले राजस्व विभाग के दल के सदस्यों का कहना कि बस हम तो खानापूर्ति करने जाते हैं, वहां वसूली के लिए कुछ नहीं है। कर्ज का संजाल बहुत पहले ही बुन दिया गया था। यूनियन बैंक ने 17 साल पहले 1988-89 में इस गांव को सेवा क्षेत्र निर्धारण योजना के तहत चयनित किया था। तब बड़ी संख्या में खेती के काम के लिए कर्ज दिये गए। उन्हीं कर्जदारों में किशोरी लाल साहू भी शामिल था। अभी तो उसकी पत्नी शोभा भी बैंक की 10 हजार की कर्जदार है। 17 साल बीतने के बाद भी उन 90 किसानों की माली हालत ऐसी नहीं हुई कि वे अपना कर्ज लौटा सकें। इस बात को बैंक भी जानता है। यही कारण है कि पिछले दिनों के कर्जदारों के खिलाफ जारी आरसी को बैंक ने यह कहते हुए वापस ले लिया कि

निर्धारित किये गए गरीबी रेखा का पैमाना केवल भोजन ऊर्जा–कैलोरी पर आधारित है। इस तरह यह केवल क्षुधा पूर्ति भूख की तृप्ति पर ध्यान देती है। इसको गरीबी रेखा की बजाय भुखमरी रेखा कहना ज्यादा उचित है।

बकाएदारों के पास वसूलने योग्य कोई सम्पत्ति है ही नहीं। यह अलग बात है कि बैंक के दस्तावेजों में आज भी 90 परिवार कर्जदार हैं।

फिर भी कर्ज के लिए मची है होड़

बुंदेलखंड में प्रति व्यक्ति आमदनी राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। बुंदेलखंड के जिले देश के चुनिंदा गरीब और संकटग्रस्त जिलों में शुमार हैं। यहां के हालत पर गौर किये बिना तमाम योजनाएं लागू कर दी जाती हैं। परिणाम भी घातक होता है, लेकिन न तो केन्द्र सरकार और न ही राज्य सरकार जमीनी हकीकत पर गौर करने को जहमत समझते हैं। प्राकृतिक आपदाओं की मार, पथरीली जमीन यहां के किसानों का हतभाग्य बन गए हैं। खेती-बाड़ी चौपट है, दो जून की रोटी के लाले हैं, किसान कर्ज के बोझ तले दफन हो रहे हैं। फिर भी यहां बैंकों से कर्ज देने का क्रम बदस्तूर चल रहा है। यहां के किसान इसलिए कर्ज ले रहे हैं कि खेती मंहगी है। बढ़िया बीज, उत्तम खाद और कीटनाशक से अच्छा पैदावार होगा, शायद सरकार यही समझ रही है, लेकिन बैंकों को पता है कि किसान अपनी दूसरी घरेलू जरूरतों के लिए कर्ज ले रहे हैं। बैंक करें भी तो क्या? सरकार ने उनको लक्ष्य दे दिया है कि इतना कर्ज किसानों को हर हाल में देना है, भले ही वह कर्ज किसानों के लिए जानलेवा साबित हो जाय।

कर्ज के लिए जुगाड़ लगा रहे जिस किसान से बात हुई, उसने बताया कि बैंक से कर्ज हासिल करना एक बड़ा कठिन कार्य है। कर्ज के लिए गांव से लंबी दूरी पर स्थित बैंक और नाना प्रकार के कागज पत्रों के लिए तहसील और विकासखंड दफ्तर पर तो कई-कई बार जाना पड़ता है। जमीन के इंतखाप, खसरा-खतौनी और नोड्यूज लेने के लिए अधिकारियों और कर्मचारियों की जेब गर्म करनी पड़ती है। बैंक के फार्म का पेट भरने के

अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों की मानें तो वर्ष 2020 तक विकसित भारत के सपने को वास्तविकता प्रदान करने के लिए 'निर्धनता' की एक उचित और व्यापक परिभाषा आवश्यक है।

लिए पैसा और समय दोनों जाया होता है। अगर फार्म की औपचारिकता में कोई कसर रह जाती है तो बैंक वाले कभी-कभी बहुत गलत तकीके से पेश आते हैं। कई किसानों ने यह भी बताया कि ऐसा नहीं है कि बैंक की सारी औपचारिकताएं पूरी होते ही बैंक बिना किसी झंझट के कर्ज दे देते हैं। वहां भी घूस का रेट तय है। तमाम दलाल इस काम को कर रहे हैं। दलालों का इशारा पाते ही किसानों को कर्ज दे दिया जाता है।

बुंदेलखंड में पिछले कई वर्षों से सूखा, अतिवृष्टि, पाला, ओला, असमय बरसात जैसी दैवी आपदाओं ने यहां के किसानों की कमर तोड़ दी है। एक मोटे अनुमान के मुताबित लगभग सभी छोटे, मझोले और सीमांत किसानों की माली हालत एकदम जर्जर है। कर्ज और उसके ब्याज को लौटाने की ताकत उनमें नहीं है। लेकिन किसी को बेटी की शादी करनी है, तो किसी को अपने बच्चों की पढ़ाई की चिन्ता है। अधिक संख्या तो उन लोगों की हैं जो परिवार का पेट पालने के लिए कर्ज ले रहे हैं। ऐसे जरुरतमंद किसानों का बैंकों पर कर्ज लेने के लिए तांता लगा हुआ है। अकेले भारतीय स्टेट बैंक की मुख्य शाखा बांदा से इस वर्ष जुलाई महीने तक 374 किसानों ने अपनी जमीनें गिरवी लिखकर 60 लाख रुपया कर्ज ले लिया है। बैंक के एक कर्मचारी ने बताया कि प्रतिदिन औसतन 50 किसान कर्ज लेने आते हैं। एक किसान ने बताया कि खेती में इतना पैदा नहीं हुआ कि पूरा परिवार रोटी खा सके। बीमारी, विवाह और घर के अन्य खर्चे कहां से लाएं। किसान क्रेडिट कार्ड पर कर्ज मिल रहा है, सो ले रहा हूँ। अगले साल अच्छी खेती की संभावना है। बैंक का कर्ज उतार देंगे। यहीं सोचकर रमाशंकर सिंह और किशोरी साहू ने भी कर्ज लिया था। कर्ज तो नहीं उतार पाए लेकिन कर्ज के कारण इस दुनिया से चले गए।

भारतीय स्टेट बैंक के मुख्य प्रबंधक सर्वजीत सिंह ने बताया कि उनकी शाखा 60 लाख

लगता है देश में भूख से हो रही मौतों को अनचाहे सरकारी स्वीकृति मिल रही है और उसी के आलोक में योजनाएं बन रही हैं।

वर्तमान कीमतों पर पौष्टिक आहार के लिए प्रति व्यक्ति औसतन 573 रुपए की जरूरत है। इसके अलावा स्वास्थ्य–30 रुपए, कपड़ा–39 रुपए, ऊर्जा–55 रुपए और अन्य विविध खर्चों के लिए न्यूनतम 164 रुपए की आवश्यकता को जोड़कर देश में गरीबी रेखा 840 रुपए निर्धारित होनी चाहिए।

रुपया किसान क्रेडिट कार्ड में बांट चुकी है। अभी पिछले सालों का 255 किसानों पर 15 लाख रुपया बाकी है। उन लोगों को आरसी जारी कर दी गयी है। जो हालत हैं उनमें तो यही लगता है कि 255 किसानों का दिन का चैन और रातों की नींद उड़ गयी होगी। अब आगे के लिए तो यही कहा जा सकता है कि 'उनका भगवान ही मालिक है।'

जिंदगी दांव पर

केकेसी यानी किसान क्रेडिट कार्ड। बुंदेलखंड में केकेसी किसानों के जी का जंजाल बनता जा रहा है। किसानों की फौरी जरुरतों के लिए एनडीए सरकार के कृषि मंत्री राजनाथ सिंह ने खास रुचि लेकर किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड को लागू करवाया था। इसको लागू करने के पीछे उददेश्य यह था कि यह कार्ड किसानों के लिए साख का प्रमाणपत्र होगा। उनकी हैसियत के मुताबिक बिना किसी ढेर सारी औपचारिकताओं के बैंकों से कर्ज मिल जाया करेगा। उनको खेती के लिए गांव के महाजनों या सूदखोरों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। किसानों का शोषण रुकेगा। लेकिन बुंदेलखंड में तो इसका उददेश्य ही पीछे छूटता नजर आ रहा है। किसान क्रेडिट कार्ड से आम किसानों को कर्ज सीधे नहीं मिलता। बैंक और किसानों के बीच एक 'दलाल' तंत्र विकसित हो गया है। जो बैंक अधिकारियों और किसानों के बीच सेतु का काम करता है। दलाल नाम से ही स्पष्ट है कि बैंक अधिकारी इसी तंत्र के जरिये अपनी कमाई करता है। बुंदेलखंड का लुटा-पिटा किसान इस तंत्र की जाल में जब एक बार फंस गया, तो यह तय मानिये लाख छटपटाने के बाद भी उसका उस जाल से निकलना संभव नहीं है। किसान लगातार कमाई का जरिया बन जाता है। अमर उजाला के संपादक प्रताप सोमवंशी अपनी एक रिपोर्ट में लिखते हैं कि किसान क्रेडिट कार्ड से कर्ज लेने के खेल में किसान एक मोहरा बन जाता है और दांव पर

लगती है उसके पुरखों की जमीन। यह खेल किसानों के लिए भयावह है और बैंक अधिकारियों तथा दलालों के खेल में किसानों के हिस्से आती है स्थायी हार। वह आगे लिखते हैं कि 'खेल कुछ यूं शुरू होता है। किसान के पास एक दलाल पहुंचता है। प्रलोभन दिया जाता है कि पांच हजार का कर्ज ले लो तो एक लाख रुपए का क्रेडिट कार्ड बन जाएगा। पहले से कई दूसरे कर्ज, सूखे के संकट और घरेलू जरूरतों के बोझ तले दबे किसान के मन में लालच जग जाता है। ज्यों ही किसान कर्ज के लिए आवेदन करता है यहीं से शुरू होता है उसके मोहरा बनने का सिलसिला। प्रताप सोमवंशी बताते हैं कि अगर किसान को एक लाख रुपए का कर्ज लेना है तो बैंक और दलाल के खर्चे समेत 15 हजार रुपए 'लांच' में निकल जाते हैं। 'लांच' रिश्वत का स्थानीय नाम है, जिसको बिना किसी हिलाहवाली के मान्यता मिली हुई है। किसान के हिस्से आया 85 हजार रुपए। लेकिन उसको ब्याज एक लाख रुपय पर ही देना होगा। आमतौर पर घर की आवश्यकताओं के लिए ही किसान कर्ज लेता है। अगर आसान तरीका निकल जाए तो उसके घर में खाने-पीने, बीमारी, तीज-त्योहार और शादी-व्याह के लिए पैसे की जरुरत तो सदैव बनी हुई है। कभी-कभी घर की मरम्मत और बेटे के लिए सोटर साइकिल खरीदने के लिए भी पैसों की जरुरत होती है। ऐसे कामों के लिए सरकारी स्तर पर कर्ज देने का कोई इंतजाम नहीं है। इसलिए वह 'लांच' देकर किसान क्रेडिट कार्ड के जरिये कर्ज लेने का आसान तरीका अख्तियार कर रहा है। मैं खुद एक ऐसे किसान को जानता हूं जिसने अपने बेटे की नौकरी के लिए घूस के वास्ते किसान क्रेडिट कार्ड से कर्ज लिया। लेकिन उसके बेटे को नौकरी नहीं मिली और घूस का पैसा भी वापस नहीं मिला। अर्थात बिना किसी उपयोग के वह बैंक का कर्जदार बन गया। 15 हजार लांच में और 85 हजार नौकरी के घूस में चला गया। अगर बैंक कर्ज वापसी के लिए दबाव बनाएगा तो वह किसान वहां से कर्ज

बैंक मैनेजर की धमकी और बेटी के आगे हाथ फैलाने की आत्मग्लानि का अंत रमाशंकर सिंह की खुदकुशी के रूप में हुआ। 6 बेटियों और चार बेटों के पिता ने 25 जुलाई की रात आत्महत्या कर ली।

रमाशंकर सिंह के भाई रामबहादुर ने बताया कि बैंक मैनेजर ने सबके सामने भईया को धमकाया। जेल भेजवाने और खेतों की नीलामी कर देने की धमकी दी।

लौटाएगा। गिरवी रखी जमीन जाएगी और वह कंगाल हो जाएगा।

प्रताप सोमवंशी अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि किसान पर संकट की पहली लाठी पहला साल शुरू होते ही पड़ती हैं। बैंक को रुपया चाहिए। पैसा मोटर साइकिल और बेटे की नौकरी जैसे गैर उत्पादन मद में चला गया, तो आएगा कहां से। वह बताते हैं कि ऐसे में दलाल फिर दाखिल होता है। वह किसान से कहता है कि 13 हजार रुपए का तुरंत इंतजाम करो। 10 हजार रुयए ब्याज का और 3 हजार रुपए लांच का। किसान अपने रिश्तेदारों या सूदखोर से 13 हजार रुपए का इंतजाम करता है। अर्थात एक और कर्ज के दलदल में फंसता है। दलाल एक लाख रुपए बैंक में जमा करके पहले से ही किसान से निकासी का चेक ले लेता है। यानी तीन दिन के भीतर कंगाल किसान बैंक में साख वाला ग्राहक बन जाता है। यह केवल इसलिए होता है कि किसान दलाल के जरिये लांच का पैसा बैंक अधिकारी को भेज देता है और यही उसके लिए साख का काम करता है। किसान इस नए कर्ज से पुराने कर्ज को ब्याज समेत लौटा देता है। कागजों में सब मामला किसान को और संकट में डालने वाला होता है। किसान की बैंक में बंधक जमीन को गिरवी रखकर दलाल किसान को अपना कर्जदार बना लेता है और शुरू हो जाता है किसान के शोषण का अंतहीन सिलसिला। कर्ज के दुष्चक्र में एक बार किसान फंसा तो उसमें से निकलना उसके लिए असंभव सा हो जाता है।

कर्ज : चार्वाक और मनु

कर्ज पर 'चार्वाक' कहते हैं कि यथा जिवेत सुखं जिवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। अर्थात् इस जीवन को सुख से जीना चाहिए, भले ही कर्ज लेकर ही घी पीना पड़े। उनका मानना था कि आदमी का पुनर्जन्म नहीं होता है, इसलिए कर्ज लेकर सुखमय जीवन जीते-जीते मर जाना

ही श्रेयस्कर है।

'मनु' के मुताबिक उऋण होकर ही मरना चाहिए। उन्होंने राजा को कोई निर्णय सुनाने से पहले 18 तत्वों पर ध्यान देने की बात कही थी-उसमें पहला तत्व यही था कि राजा जिस व्यक्ति के बारे में फैसला ले रहा है, पहले यह तहकीकात करे कि वह आदमी किसी से कर्ज तो नहीं ले रखा है। मनु कहते हैं कि जिसने कर्ज दिया है उसे यह हक है कि वह कर्ज पाने के लिए जो चाहे सो करे और अपना कर्ज वापस ले। कर्ज लेने वाले का भी यह दायित्व है कि वह येन-केन प्रकारेण लिये गए कर्ज का भुगतान करें। लेकिन मनु ने प्रभावशाली लोगों (ब्राह्मणों) को इससे अलग रखा। उन्होंने कहा कि अभिजात्य वर्ग कर्ज वापसी के लिए किश्त निर्धारित कर लें और उसके मुताबिक कर्ज वापस करें। अर्थात प्राचीन काल में भी किश्तों में कर्ज अदायगी की व्यवस्था थी, लेकिन केवल अभिजात्य वर्ग के लिए।

खैर, हम यह नहीं कहते कि कर्ज लेकर वापस वापस नहीं करना चाहिए, लेकिन चार्वाक ने तो सबके लिए 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' की बात कही थी। जबकि इसको अंगीकार किया बड़े-बड़े लोगों ने। अपने प्रभाव के बल पर बड़े-बड़े कर्ज लेते गए और चुकता करने के दबाव से सदैव मुफीद रहे। मनु ने तो नैतिकता की दुहाई देकर सबके मन में कर्ज चुकता करने की प्रतिबद्धता को कायम कर दिया, लेकिन कुलीन लोगों को राहत देकर उन्होंने बैंकिंग प्रक्रिया पर भी अपना असर डाल दिया। बैंक वाले कुलीन लोगों से जितनी ही शालीनता से पेश आते हैं, गरीब लोगों पर उतना ही क्रूर बनकर टूटते हैं। अभिजात्य वर्ग को सलाम ठोकते हैं और गरीबों पर कहर ढाते हैं। कहने का सार यह कि लोकतंत्र में चल रही बैंकिंग प्रणाली कहीं न कहीं आज भी शताब्दियों पहले वाली मनुस्मृति पर ही आधारित है।

घरेलू जरूरतें, खाने-पीने, शादी-ब्याह, तीज-त्यौहार के लिए सरकार की ओर से किसी

बड़ागांव के तकरीबन 80 फीसदी लोग बैंकों और साहूकारों के कर्जदार हैं। इसी साल जुलाई महीने में गांव के 20 किसानों के नाम बैंक से आरसी जारी हुई। इन 20 किसानों पर बैंकों का कम से कम 6 लाख रुपया कर्ज है।

बड़गांव के तकरीबन 80 फीसदी लोग बैंकों और साहूकारों के कर्जदार हैं। इसी साल जुलाई महीने में गांव के 20 किसानों के नाम बैंक से आरसी जारी हुई। इन 20 किसानों पर बैंकों का कम से कम 6 लाख रुपया कर्ज है।

आर्थिक सहायता का प्रावधान नहीं होता, जबकि गरीब के लिए यही अवसर होते हैं जब उसे पैसे की जरूरत होती है। ऐसे में वह क्या करे? किसके पास जाए? ये जरुरतें साश्वत हैं और अनादि काल से चली आ रही हैं। कृषि चौपट होने से गांव में काम नहीं है, आर्थिक कमाई के सारे स्रोत सूख चुके हैं। अगर उसको शहर में काम के लिए जाना हो तो भी किराये के लिए पैसा चाहिए, अब यह अलग सवाल है कि शहर में भी काम करने वालों के लिए काम है भी या नहीं, क्योंकि शहरों में तो अब मजदूरों का बाजार लगता है और मजदूर बाजार में खड़ा हर मजदूर काम पा जाए इसकी भी कोई गारंटी नहीं है।

सूदखोरों का चरित्र भी बहुत क्रूर और निर्मम है, फिर भी गरीबों के लिए वह एक ऐसे नजदीकी की तरह है, जो उसके सुख-दुख को जानता है, उसकी जरूरतों को जानता है। सबसे बड़ी बात यह कि सूदखोर से पैसा लेने की न तो कोई औपचारिकता है और न ही दफ्तरों की चक्कर काटने की फजीहत। इसको अपनी जरुरत बताओ और पैसा मिल जाता है। वैसे ये सूदखोर ब्याज की पहली किश्त मूलधन से ही काटकर देते हैं। वैसे भी बैंकों में किस्त तो नहीं काटी जाती, लेकिन पहली किश्त का कई गुना और कभी-कभी तो कर्ज की पूरी राशि का एक तिहाई पहले ही अधिकारियों, कर्मचारियों और दलालों की जेब में चला जाता है। गांव के महाजन से मिले कर्ज का आम परिणाम यह होता है कि केवल ब्याज को चुकाते-चुकाते कर्ज लेने वालों की जिंदगी खत्म हो जाती है और उसकी अगली पीढ़ी को या दो-तीन पीढ़ियों तक को उसे चुकाना पड़ता है, लेकिन कर्ज लेते समय न तो कोई सफाई देनी पड़ती है और न तो कोई कागजी खानापूरी। इसलिए थोड़े समय की राहत उनको महाजनों से कर्ज लेने के लिए आसान तरीका होती है।

महाजन कर्ज के बदले यदि नकद राशि नहीं पाता है तो अनाज की मांग करता है। अगर

कर्ज लेने वाला अनाज भी देने लायक नहीं है तो महाजन की बेगारी करनी पड़ती है। गरीबों की कर्ज वापसी की कोई कूव्वत नहीं होती। सो तमाम उदाहरण हैं कि बंधुआ मजदूरी यहां तक कि वेश्यावृत्ति गरीबों की मजबूरी से जन्म लेती है। गरीब की आमदनी और उसके खर्चों में एक भारी अंतर है। घर की जरूरतें इतनी आवश्यक हैं कि उसी को पूरा करना उनके वश की बात नहीं है, तो महाजन की कर्जदारी कहां से खत्म करेंगे।

कर्ज के ये भारी मोल

आदिवासियों के इलाके में जाने के बाद ऐसा नहीं लगता हम 21वीं सदी में हैं। उनकी आपबीती और मौजूदा संत्रास देखकर तो यही लगता है कि हम किसी आदिम या बर्बर जमाने में जी रहे हैं। आज भी इनके परकोटे के भीतर सरकारी इंतजामों की नजरे इनायत और विकास की रोशनी नहीं पहुंची है। जुल्म और ज्यादती मौजूदा समाज द्वारा थोपी गयी एक ऐसी पीड़ा है, जिस पर ये आदिवासी समुदाय उफ तक नहीं करते। कराहने और रोने की बात तो दूर उस पीड़ा को अपने अंदर जज्ब करना उनकी नियति बन गयी है। दादू-दबंगों का कहर आम बात है। सरकारी उपेक्षा की उन्हें परवाह नहीं। दिन-रात हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी दो जून की रोटी भर के लिए उनको मजदूरी नहीं मिलती। तमाम आदिवासी आज भी बंधुआमजदूरी के लिए अभिशप्त हैं। छोटे-मोटे कर्ज के एवज में उनकी बहू-बेटियों को गिरवी रख लिया जाता है। रखैल बना लिया जाता है। उम्र जब ढलने लगती है तो या तो उनको छोड़ दिया जाता है या दूसरों के हाथों बेंच दिया जाता है, एक और संत्रास झेलने के लिए। ये दबंग अपने असलहों और गुंडागर्दी के बल पर और न जाने क्या-क्या जुल्म करते हैं आदिवासी समुदाय पर। कर्ज के बदले इतना भारी मोल शायद आपको अटपटा लगे, लेकिन यही हकीकत है चित्रकूट और कर्वी के अलावा अन्य

शिव पूजन, गोरे लाल, भैरम प्रसाद, वरदानी, राम सुफल, बृजभूषण, जगत नारायण, मलखान सिंह, इस्लाम, विनोद उर्फ बग्गड़, अमर सिंह, राम गोपाल, शांती देवी, टिर्रा, सुखवा, राम गुलाम और शिव पूजन आदि के नाम आरसी कट चुकी है और ये वसूली के भय से भागे-भागे फिर रहे हैं।

शिव पूजन, गोरे लाल, भैरम प्रसाद, वरदानी, राम सुफल, ब्रजभूषण, जगत नारायण, मलखान सिंह, इस्लाम, विनोद उर्फ बग्गड़, अमर सिंह, राम गोपाल, शांती देवी, टिर्रा, सुखवा, राम गुलाम और शिव पूजन आदि के नाम आरसी कट चुकी है और ये वसूली के भय से भागे-भागे फिर रहे हैं।

आदिवासी इलाकों की। कुछ घटनाओं का जिक्र यहां मौजूं है, क्योंकि ये घटनाएं प्रकाश में आयीं, कोर्ट-कचहरी तक गयी, लेकिन दादू-दंबगों और प्रशासनिक अमलों की दुरभिसंधि से इनको दफ्न कर दिया गया। इस पर न तो कोई मानवाधिकार आयोग की नजर जा रही है और न ही सरकार की।

एक है तिरसिया : देह ने चुकाया कर्ज

वाकया डेढ़ दशक पहले का है। तब तिरसिया 19 साल की थी। उसके पिता मैकू कोल ने अपनी इस बड़ी बेटी की शादी अपनी ही बिरादरी के मध्य प्रदेश के श्यामलाल से कर दी। सतना के नजदीक कोठी गांव में तिरसिया ने अपना नया जीवन हंसते-खेलते शुरू कर दिया। आचरण, व्यवहार इतना अच्छा था कि उसका पति ही नहीं उसके सास-श्वसुर भी तिरसिया को बहुत लाड़ करते थे। कुछ ही दिनों में सबकी दुलारी बन गयी तिरसिया। इस बीच उसने एक बेटे को जन्म भी दिया। लेकिन लगता है तिरसिया के इस हंसते-खेलते जीवन को किसी की नजर लग गयी। एक दिन एक राक्षस आया और उसको यह कहकर उठा ले गया कि मैकू कोल ने उससे 900 रूपये कर्ज लिये हैं, जब तक वह कर्ज नहीं चुकता करेगा, तिरसिया उसके यहां गिरवी रहेगी। तिरसिया का पति श्यामलाल उन दिनो दिल्ली गया हुआ था, सो उसके बूढ़े-मां बांप उस राक्षश को रोक नहीं सके और गोद के बच्चे को वहीं रोता-कलपता छोड़कर वह अत्याचारी तिरसिया को उठा लाया। वह आततायी कर्वी तहसील के गढ़चप्पा ग्राम सभा का दबंग था। उसने तिरसिया को रखैल बनाकर रख लिया। सभ्य समाज के तथा कथित लोग जननायक की इस खलनायकी का विरोध करने का साहस नहीं जुटा सके। तिरसिया 25 साल तक रखैल बनकर रही और इस दरम्यान

उसके पांच बच्चे हुए जिसमें एक की मृत्यु हो गई। इसी बीच शादी में तिरसिया को मिले चांदी के जेवरों को भी उस दगाबाज ने धीरे-धीरे बेंच दिया। जब उम्र और आर्थिक रूप से वह आशक्त होने लगी तो दबंग ने तिरसिया को घर से निकाल दिया। रोती-बिलखती तिरसिया ने अपने चार बच्चों को न्याय दिलाने के लिए किसके चौखट को नहीं छुआ, लेकिन हर ओर से उसे निराशा हाथ लगी। अंत में उसने न्यायालय की शरण ली, लेकिन वहां भी तारीख पर तारीख ने उसके रहे-सहे हिम्मत को तार-तार कर दिया। ऊपर से दबंगों द्वारा जान से मार देने की धमकी भी लगातार मिल रही थी।

थक-हारकर जब उसने अपने पिता के घर की ओर रूख किया तो वहां के हालात को देख उसको काठ मार गया। उसके पिता की 12 बीघा जमीन पर एक और अत्याचारी गुनगाई ने कब्जा जमा लिया था। मां मुहरलिया और बहने रनिया तथा राजकुमारी दर-दर ठोकरें खा रही थी। स्थानीय दादू और दबंग जब चाहते उनके अस्मत से खेलते। किसी में ऐसी हिम्मत नहीं थी कि विरोध करता। अब करे तो क्या करे तिरसिया? उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। जननायक ने भगा दिया, श्यामलाल उसके बच्चों को अपना नाम देने से मना कर दिया। मानवता को उसने कभी देखा नहीं। अंत में वह अपनी मां और बहनों से मिली। मां और बहनों ने जब उससे अदालत चलने की बात कही तो वह बिफर पड़ी। न्याय, व्यवस्था और सभ्य समाज से उसका विश्वास उठ चुका था। आज भी सुअरगढ़ा में तिरसिया और उसका परिवार अभिशप्त जीवन जी रहा है। पुलिस जांच और अदालती आदेश की फाइलें बंद हो चुकी हैं। पता नहीं आदिवासी वाहुल्य इस इलाके में रोज ही कोई न कोई तिरसिया जमींदारी प्रथा के इन पोषकों की शिकार हो रही हैं।

किशोरी लाल के मामले को भी सरकार कर्ज के कारण की गई आत्महत्या नहीं मानती। तत्कालीन प्रभारी जिलाधिकारी गोपालचंद्र पांडेय ने बताया कि उसने गरीबी और बड़े परिवार की जिम्मेदारियों का ठीक ढंग से नहीं उठा पाने के कारण जान दी।

कर्ज के लंबरदयों ने बेंच दिया भोण्डी को

यूनियन बैंक बांदा के शाखा प्रबन्धक आर सी वर्मा ने बताया कि किशोरी लाल ने 6 नवम्बर 1996 को आईआरडीपी योजना से 15 हजार रुपए का कर्ज लिया। एक साल बाद उसने 21 नवम्बर को 1997 को पॉच हजार रुपया जमा किया। उसके बाद कोई किश्त जमा नहीं किया।

आजादी का मतलब क्या होता है, भोण्डी नहीं जानती। सरकार, शासन, प्रशासन, न्याय, मानवता क्या है, उसे नहीं पता। वह जानती है महज तीन सौ रूपये के लिए औरत बिकती है, उसकी अस्मत नीलाम होती है। क्योंकि भोण्डी ने अपने जीवन में यही भोगा है। संवदेना के हजार शब्द भी उसको संवेदित नहीं करते। वह हाड़-मांस की ऐसी यंत्र बन गयी है जो दबंगों द्वारा संचालित होती है, कभी इस अत्याचारी के पास तो कभी उस बेरहम के पास। मानिकपुर थाने के जमुनिहाई गांव में भोण्डी अपने पति गोविन्द और बेटी नगेसिया के साथ रहती थी। दुनिया के छल-प्रपंचों से दूर भोण्डी और उसका परिवार अपनी बदहाली पर भी खुश था। अचानक जनवरी 1988 में उस पर पहाड़ टूट पड़ा। टिकरी गांव का एक मनबढ़ ब्राह्मण रामकिसन आया और भोण्डी को यह कहकर एक साल के लिये अपने साथ ले गया कि गोविन्दा उससे 300 रूपये कर्ज लिया है। इसके एवज् में वह एक साल तक मेरे पास गिरवी रहेगी और साल पूरा होते ही भोण्डी आजाद हो जाएगी। मानवता पर कलंक का यह सौदा गोविन्दा भी मान गया। हालांकि सरकारी जांच में यह पाया गया कि रामकिसन से गोविन्दा ने कोई कर्ज नहीं लिया। लेकिन जांच अधिकारी को कौन बताए कि इस कर्ज का कोई कागजी ब्योरा नहीं होता है, जिसको साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। खैर, गोविन्दा अपनी पत्नी को उस अत्याचारी से मुक्त कराने के लिए तत्कालीन अपर जिलाधिकारी दुर्गाशंकर मिश्र से गुहार लगाई, लेकिन गोविन्दा को न्याय नहीं मिला। उस ब्राह्मण ने इतना दहशत फैला दिया कि गोविन्दा अपनी जान बचाने के लिए गांव छोड़कर भाग गया। नर पिशाच ब्राह्मण कई वर्षों तक भोण्डी और उसकी बेटी को हवस का शिकार बनाता रहा। जब जीभर गया तो उसने भोण्डी और

उसकी बेटी को एक-दूसरे अत्याचारी के हाथों बेंच दिया।

फर्जी ऋण

बुंदेलखंड में फर्जी ऋण के भी कई मामले सामने आए। इस शातिर खेल में गांव के कुछ लोग और बैंक के कर्मचारी और अधिकारी भी शामिल होते हैं। गाहे-बगाहे अखबारों में भी इनके कारनामे प्रकाशित होते रहते हैं। कई समाज सेवी संगठन पीड़ितों के पक्ष में खड़ा होकर इस मामले को जिलाधिकारी तक पहुंचाने में तो सफल रहे, लेकिन फर्जी ऋण का खेल अब भी बदस्तूर जारी है। पिछले साल की ही बात है नरैनी तहसील के नरसिंहपुर गांव में इस तरह का मामला सामने आया। यहां के मत्थुर, बेटू, मांगी, शिवनंदन और सजीवन की जमीन पर कुछ लोगों ने किसान क्रेडिट कार्ड बनवा लिया। इनके नाम पर तुलसी ग्रामीण बैंक की शाखा नारैनी से दो लाख अस्सी हजार रुपया निकाल भी लिया गया। इन लोगों को इस गोरखधंधे की जानकारी तब हुई जब बैंक के लोग वसूली के लिए उनके घर पहुंचे। ठगी के शिकार हुए इन परिवारों की माली हालत ऐसी नहीं है कि वे किसी को 100-200 रुपए भी दे सकें। बैंक के लोगों ने इन लोगों को धमकी भी दी कि अगर बैंक का पैसा समय से नहीं लौटा तो उनके खेतों की नीलामी कर दी जाएगी। गरीब किसान इस नयी विपदा से निकलते भी तो कैसे। फिर भी कुछ स्वयं सेवी संस्थाओं के लोगों के साथ सभी पीड़ित बैंक पहुंचे और कर्ज के कागजातों को देखने की मांग करने लगे। बैंक मैनेजर ने कागजात दिखाने से साफ मना कर दिया। जब लोगों का दबाव बढ़ा तो कागजातों को दिखाने के लिए तैयार हुआ। अपना गला फंसते देख बैंक मैनेजर मामले की जांच कराने को तैयार हुआ। यहां सवाल यह है कि बैंक में एक खाता खुलवाने के लिए भी एक जमानतदार की जरूरत होती है। बिना जमानतदार के कोई खाता नही नहीं

किशोरी लाल की घटना पड़ुई गांव के लिए पहली घटना नहीं है। इसके पहले भी पांच लोगों ने कर्ज के कारण खुदकुशी कर ली है। इस गांव में ऐसा कोई नहीं है जिसके ऊपर बैंक या साहूकारों का कर्ज नहीं है।

पइई में 90 परिवार आज भी यूनियन बैंक के कर्जदार हैं। गांव में वसूली करने आने वाले राजस्व विभाग के दल के सदस्यों का कहना कि बस हम तो रवानापूर्ति करने जाते हैं, वहां वसूली के लिए कुछ नहीं है।

खुलता। ऐसे में बैंक बिना किसी तहकीकात के कर्ज कैसे दे देते हैं।

तुलसी ग्रामीण बैंक के मैनेजर देवी शरण गुप्ता और दलाल राज कुमार जब चारो ओर से घिरने लगे तो बैंक मैनेजर ने भुक्तभोगियो के नाम निकाली गयी राशि को मय ब्याज समेत 30 मई 2005 को बैंक में जमा किया, पीड़ितों से माफी मांगी। लेकिन उसकी कारस्तानी इतनी गंभीर थी कि तीन दिन बाद उस भ्रष्ट मैनेजर को निलंबित कर दिया गया और दलाल राजकुमार के खिलाफ धोखाधड़ी के विभिन्न मामलों में मुकदमा दर्ज कर उसे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। यहां काम करने वाली विद्याधाम समिति और चिन्गारी संगठन के इमानदार प्रयास से भ्रष्ट लोगों के खिलाफ कार्रवाई संभव हो सकी।

बुंदेलखंड के लिए यह कोई नया मामला भी नहीं है। यहां तो फर्जी कागजात बनाकर दूसरों के नाम पर ट्रैक्टर तक ले लेते हैं। मामला खुलते-खुलते भुक्तभोगी की जमीन तक नीलाम हो जाती है। माखनपुर गांव के एक जमीदार परिवार के साथ भी यही खेल हुआ। जमीन की नीलामी का सदमा बर्दाश्त नहीं कर पाने की स्थिति में पीड़ित की मौत तक हो गयी। बैंक अधिकारी और ठगों के गिरोह की दुरभिसंधि आज भी जारी है। आये दिन फर्जी ऋण की कहानी सामने आती रहती है। साहपाटन गांव के भइयादीन मजदूर हैं। इनके पास थोड़ी सी जमीन भी है। इस जमीन पर कुछ ठगों की नजर लग गयी। भइयादीन अपने परिवार का पेट पालने के लिए मध्य प्रदेश के पन्ना में मजदूरी करता है। उसके नाम पर भी ठगों द्वारा तुलसी ग्रामीण बैंक की नरैनी शाखा से ही 33 हजार रुपए निकाल लिए गए। जब भइयादीन को इस जालसाजी का पता चला तो वह अपना काम धन्धा छोड़कर भागा-भागा आया। बैंक गया तो मैनेजर ने उसे कागजात नहीं दिखाए। दूसरे दिन जब पूर्व प्रधान को लेकर गया तो उसे फर्जी लोन के कागजात देखने को मिले। इस फर्जीवाड़े में

जिस रामलाल को गवाह बनाया गया था उसकी 7 साल पहले मौत हो चुकी है। भइयादीन के चेहरे से मिलते-जुलते किसी आदमी का फोटो लोन फार्म पर लगा हुआ था। तुलसी ग्रामीण बैंक में फर्जी कर्ज लेने की लगातार कई मामले सामने आए, लेकिन आज तक दोषियों को नहीं पकड़ा जा सका।

फिर भी केकेसी का दुष्चक्र ताक पर है। बुंदेलखंड में लाखों किसानों के पास किसान क्रेडिट कार्ड है और सैकड़ों प्रतिदिन इस जाल में फंस रहे रहे हैं। अकेले चित्रकूट धाम मंडल में 89,404 क्रेडिट कार्ड धारक किसान हैं। बांदा में 33110 किसानों के पास केकेसी है। मंडल में सर्वाधिक इसी जिले के किसानों को क्रेडिट कार्ड बांटा गया है। मौजूदा स्थिति बहुत भयावह है। हमीरपर में 25,245 किसानों को क्रेडिट कार्ड मिला हुआ है। महोबा में 15,513 केकेसी बांटा गया है, इसी जिले के भंडारा गांव का एक किसान कर्ज के कारण इस वर्ष अगस्त महीने में फांसी लगाकर मौत की गोद में चला गया। चित्रकूट जिले में भी 15,536 किसान क्रेडिट कार्ड बांटा गया है। सूखा, सरकारी नाफरमानी और अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अभावग्रस्त बुंदेलखंड के किसानों को केकेसी फौरी राहत तो दे देता है, लेकिन आगे चलकर जीवन को दुष्कर और भयावह बना दे रहा है।

फर्जी कर्ज का शिकार लाल कोरी

बैंक अधिकारियों और दलालों की दुरभिसंधि से आए दिन किसी न किसी गरीब के नाम पर फर्जी ऋण निकासी का मामला प्रकाश में आता है। दलाल और बैंक अफसर तो मौज में रहते हैं, लेकिन गरीब की नींद हराम हो जाती है, झोपड़े उजाड़ दिये जाते हैं। जिनका कोई दोष नहीं होता उन पर बैंक अधिकारी वसूली के नाम पर इतनी ज्यादतियां करते हैं कि मानवाधिकार के सारे नियम-कानून बलाये ताक चले जाते हैं। अगर आपको भरोसा न

बुंदेलखंड में प्रति व्यक्ति आमदनी राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। बुंदेलखंड के जिले देश के चुनिंदा गरीब और संकटग्रस्त जिलों में शुमार हैं। यहां के हालत पर गौर किये बिना तमाम योजनाएं लागू कर दी जाती हैं।

बैंकों को पता है कि किसान अपनी दूसरी घरेलू जरूरतों के लिए कर्ज ले रहे हैं। बैंक करें भी तो क्या? सरकार ने उनको लक्ष्य दे दिया है कि इतना कर्ज किसानों को हर हाल में देना है, भले ही वह कर्ज किसानों के लिए जानलेवा साबित हो जाय।

हो तो चित्रकूट जिले के शिवराम क्षेत्र के रौली कल्याणपुर निवासी लालाकोरी से पूछ सकते हैं। लाला एक गरीब दलित है। दुनिया के छल प्रपंचों से अनजान लाला सरकारी कागजों में 30 हजार रूपये का कर्जदार घोषित कर दिया गया। इस बात की जानकारी लाला कोरी को तब हुई, जब उसे हाथ में कुर्की वसूली का वारंट थमा दिया गया। 30 पैसे के लिए मोहताज लाला अब 30 हजार रूपये का इंतजाम कहां से करे। उसके परिवार पर तो पहाड़ टूट पड़ा। वह भागा-भागा सहकारी बैंक के मैनेजर के पास पहुंचा और बताया कि हमने तो कभी कर्ज लिया ही नहीं तो मैनेजर ने उसे पागल करार देकर बैंक से बाहर भगा दिया। बेजार लाला गांव के पढ़े-लिखे लोगों को भी अपनी व्यथा बतायी, लेकिन सरकारी काम में दखलंदाजी के कारण कोई कुछ नहीं बोला।

यहां भी वही सवाल यह खड़ा होता है कि जिस बैंक में एक बचत खाता खोलवाने के लिए तमाम गवाहों और गारंटर ही जरूरत होती है, उस बैंक से बिना किसी तस्दीक के 30 हजार रूपये का ऋण कैसे जारी हो जाता है। वह भी उस बैंक से जिसका गठन ही किसानों के हित के मद्देनजर किया गया हो। उत्तर भी साफ है कि बैंको की कार्यप्रणाली भी संदिग्ध है जिस किसान के पास बैंक में गिरवी रखने के लिए एक इंच जमीन न हो उसको भी ऋण दे दिया गया। लाला कोरी के मामले पर बारीक नजर डालें तो सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। किस्सा वर्ष 2005 का है। लाला कोरी से एक पड़ोसी पटेल ने सरकारी सहायता दिलवाने के नाम ऋण फार्म पर अंगूठा लगवा लिया। उसका फोटो चस्पा कर कागजात तैयार कर लिया। बैंक अधिकारियों से साठ-गांठ होने के कारण लाला के नाम पर 24 मार्च 2005 को 32 हजार रूपये का कर्ज निकाल लिया। वसूली का फरमान जब जारी हुआ और लाला बदहवास भागा-भागा फिर रहा था, उसी समय एक सामाजिक कार्यकर्ता बलराम को इसकी जानकारी हुई। बलराम दूसरे दिन लाला को लेकर बैंक मैनेजर के यहां

गया और पूरा प्रकरण तफ्सील से बैंक मैनेजर को बताया। बलराम के तर्कों को सुन मैनेजर जांच के लिए तैयार हुआ। फिर अगले दिन बलराम उस जालसाज पटेल को पकड़ा। पटेल पहले तो इधर उधर की बातें हांकता रहा, लेकिन अंततः उसने फर्जी ऋण निकासी की बात कबूल कर ली और बलराम के दबाव में 30 अप्रैल 05 को लाला को इस फर्जी कर्ज से मुक्ति मिली।

कर्ज को और आसान बनाया

जो नया शासनादेश आया है उसके अनुसार अब प्रति एकड़ जमीन पर 8 हजार रुपए का किसान क्रेडिट कार्ड बनेगा। यह जरूरी नहीं है कि जमीन सिंचित हो, अगर जमीन असिंचित भी है तो कोई समस्या नहीं है। एक एकड़ असिंचित जमीन पर भी 8 हजार रुपए का ही क्रेडिट कार्ड बनेगा। अब तो एक एकड़ से कम भूजोत वालों का भी क्रेडिट कार्ड बन रहा है। अगर आपके पास एक बीघा जमीन है तो आपको 3500 रुपए का क्रेडिट कार्ड बन जाएगा।

भण्डारा का 2000 किसान कर्जदार

बुंदेलखंड के महोबा जिले का एक गांव है भण्डारा। जिले के कुछ बड़े गांवों में शुमार है भण्डारा। यहां की आबादी 14 हजार है। इसी साल अगस्त महीने में यहां दो किसानों ने बैंक का कर्ज नहीं उतार पाने के कारण खुदकुशी कर ली थी। इसगांव पर विपत्ति किसी खास जाति के किसानों को लक्ष्य नहीं बनाती, बल्कि हर जाति समूह में लोग बेहाल हैं। एक पख्वारे के अंतराल में आत्महत्या करने वालों में दलित कमत कोरी हैं तो ऊंची जाति वाले रमेशचंद्र तिवारी भी हैं। फटेहाली और किसानों की बेबसी ही भण्डारा गांव की जर्दार

अकेले भारतीय स्टेट बैंक की मुख्य शाखा बांदा से इस वर्ष जुलाई महीने तक 374 किसानों ने अपनी जमीनें गिरवी लिखकर 60 लाख रुपया कर्ज ले लिया है। बैंक के एक कर्मचारी ने बताया कि प्रतिदिन औसतन 50 किसान कर्ज लेने आते हैं।

वर्तमान पहचान है। इस गांव पर बैंकों का 17 करोड़ रुपया 9 बकाया है और कमत कोरी तथा रमेशचंद्र तिवारी जैसे 2000 लोग कर्जदार हैं। साहूकारों और महाजनों से कर्ज लेने वालों की जमात अलग है। कुछ तो ऐसे भी हैं जिनके ऊपर बैंक के अलावा साहूकारों का भी कर्ज चढ़ा हुआ है। जिले के उप जिलाधिकारी कुंज बिहारी अग्रवाल बताते हैं कि सरकारी योजनाओं के तहत यहां के 2000 किसानों पर 17 करोड़ रूपये का कर्ज है। एक अनुमान के मुताबिक भंडारा गांव का हर दूसरा परिवार कर्ज तले दबा हुआ है।

किसान क्रेडिट कार्ड से आम किसानों को कर्ज सीधे नहीं मिलता। बैंक और किसानों के बीच एक 'दलाल' तंत्र विकसित हो गया है। जो बैंक अधिकारियों और किसानों के बीच सेतु का काम करता है।

भांवरपुर महाभंवर में

बंधुआ मजदूर सूखे, अकाल और बाढ़ के कारण नहीं पैदा होते हैं, इसमें अक्षम सरकार का भी बड़ा हाथ होता है, हां यह भी उतना ही सच है कि इसके पीछे गरीबी का दुष्चक्र ही होता है। समस्याओं की जड़ में सरकारों का पाखंड होता है। सूखा, बाढ़, अकाल जैसी विद्रूपताओं के पीछे कहीं न कहीं सरकार और उसकी अव्यवहारिक नीतियां और योजनाएं होती हैं। बुंदेलखंड के बांदा जिले के नरैनी तहसील के भांवरपुर गांव में हर व्यक्ति के पास अपनी एक दुखभरी कहानी है, जिसकी जड़ में फटेहाली, बेकारी और भूख है। इस गांव में गरीबों के बरखिलाफ भगवानदास पटेल और हरप्रसाद साहू जैसे नवसामंत तो हैं ही, जिला कलेक्टर से लेकर तहसील का तहसीलदार और थाने के दारोगा भी एक तरह से शरीके जुर्म हैं। पटेल और साहू का दमनचक्र गरीबों पर कई तरह से चलता है और प्रशासनिक अमला उस पर लीपापोती करता दिखता है। जमींदारी उन्मूलन को लागू हुए भले ही कई दशक हो गए, लेकिन भंवरपुर में बंधुआ मजदूरी का अभिशप्त खेल चल रहा है।

बंधुआ मजदूरी भी है यहां

जमींदारी उन्मूलन को लागू हुए लंबा अरसा हो गया, लेकिन सच कहें तो बुन्देलखंड में आज भी नवसामंती अवशेष कायम है। कई गांवों में साहूकार और बड़े काश्तकार दलितों और आदिवासियों से नाममात्र का कर्ज देकर बंधुआ मजदूरी कराते हैं। अगर हम बांदा जिले को ही लें तो यहां के भांवरपुर गांव में भगवान पटेल और हरप्रसाद साहू का नाम अचानक बंधुआ मजदूरी को लेकर सुर्खियों में आया। ढाई सेर अनाज के बदले दिनभर मजदूरी कराने का अमानवीय प्रचलन चल रहा है। अगर कोई विरोध करता है तो ये लोग उन गरीबों पर आतताई बनकर टूट पड़ते हैं। इस गांव में दलितों और आदिवासियों के 300 परिवार है। रामदेव ने एक बार बंधुआ मजदूरी का विरोध किया तो उसको वह विरोध बहुत भारी पड़ा। रामदेव ने बताया कि दस से बारह घंटा काम करने के बाद ढाई सेर गेहूं देकर हमें टरका दिया जाता है। इसी गांव की भूरी बताती है कि उसके पति के ऊपर फर्जी तरीके से चौदह सौ रुपये का कर्ज थोप दिया गया। जीवनभर उसका पति इन लोगों की गुलामी करता रहा। उन्हीं के दरवाजे खटते-खटते उसकी मौत भी हो गयी, लेकिन कर्ज चुकता नहीं हुआ। जुम्मन की बेवा भूरी देवी ने बताया कि भगवानदास पटेल अब उसकेऊपर 1800 रुपये का कर्ज का दावा कर रहे हैं और कहते हैं कि यह पैसा जुम्मन का बेटा भरे। भूरी देवी की माली हालत देखकर ऐसा तो नहीं लगता कि उसके जीते-जी भगवानदास का पैसा वापस हो पाएगा। यह अलग बात है कि अगर भगवानदास ने जुम्मन को कर्ज दिया भी होगा तो एक मुश्त नहीं दिया होगा। फुटकर में सौ-पचास रुपए में लिये गए कर्ज के एवज में जुम्मन ने जीवन भर भगवानदास की गुलामी की फिर भी कर्ज जस का तस बना रहा। यह अपने आप में एक सवाल है।

किसान की बैंक में बंधक जमीन को गिरवी रखकर दलाल किसान को अपना कर्जदार बना लेता है और शुरू हो जाता है किसान के शोषण का अंतहीन सिलसिला। कर्ज के दुष्चक्र में एक बार किसान फंसा तो उसमें से निकलना उसके लिए असंभव सा हो जाता है।

मिलता। इन आदिवासियों की स्थिति तो खेतिहर मजदूरों से भी दयनीय है।

यह लगभग हर गांव या आदिवासी की कहानी है कि बैंक अधिकारियों, विकासखंड के अफसरों और बिचौलियों की जेबें गर्म किए बिना किसी को बैंक से कर्ज नहीं मिलता। हर जरूरतमंद को बैंक और ब्लाक मुख्यालय की लंबी दूरी लगातार कई दिनों तक तय करनी पड़ती है। एक-एक कागज को यहां से वहां खिसकाने के लिए घूस के अलावा छोटे-छोटे अधिकारियों की चिरौरी करनी पड़ती है। दिहाड़ी तो जाती ही है, ऊपर से कर्ज लेने के लिए भी उनको साहूकारों से कर्ज लेना पड़ता है। एक अनुमान के मुताबिक जिसको कर्ज मिलता है, वह उसको पाने से पहले उस कर्ज के 30-40 फीसदी घूस के रूप में गंवा चुका होता है। अर्थात् उसको उस पैसे का भी ब्याजसहित भुगतान करना पड़ता है, जिसको उसने कभी लिया ही नहीं।

भूमिहीन या आदिवासी तो सरकारी ऋण योजनाओं से ही वंचित रह जाते हैं, क्योंकि इनके पास बैंक में गिरवी रखने के लिए कोई संपत्ति ही नहीं होती। ऐसे में ये लोग कर्ज के लिए उन्हीं अनौपचारिक स्रोतों के पास फिर जाते हैं, जहां उनकी कई पीढ़ियां बंधक हैं। इन सूदखोरों-महाजनों से कर्ज लेकर पता नहीं अपनी और कितनी पीढ़ियां उनके यहां बंधक रख देते हैं। आदिवासी उत्थान के नाम पर जो योजनाएं लागू की जाती हैं, देखा यह गया है कि इसकी आड़ में तमाम गड़बड़ियां की जाती हैं। मसलन, इन आदिवासियों की सामान्य पहुंच बैंकों या अधिकारियों तक नहीं होती, मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक ढांचा इसमें बड़े बाधा के रूप में हमारे सामने मौजूद हैं। अगर गाहे-बगाहे इनकी पहुंच बैंकों तक हो भी जाती है, तो उनको बैंकों तक पहुंचाने वाले बिचौलिये (दलाल) उनको कहीं का नहीं छोड़ते।

बैंक वाले कुलीन लोगों से जितनी ही शालीनता से पेश आते हैं, गरीब लोगों पर उतना ही क्रूर बनकर टूटते हैं। अभिजात्य वर्ग को सलाम ठोकते हैं और गरीबों पर कहर ढाते हैं।

जहां तक ग्रामीण बैंकिंग व्यवस्था की बात है तो, आमतौर पर उसकी हालत ठीक नहीं है। अगर कहीं अच्छी भी है, तो वहां बैंक गांवों के प्रभावशाली लोगो के कब्जे में है। कब्जे से मतलब है उनकी मनमानी चलती है। पंचायत स्तर पर पार्टियों की पहुंच के कारण लाभ उन्हीं लोगों को मिलता है, जो प्रभावशाली लोगों के खेमे के होते हैं। जरुरतमंद लोगों को बैंक से कोई राहत नहीं मिलती और वे तो बस इंतजार में खड़े दिखते हैं।

बाल श्रमिक भी हैं यहां

बुंदेलखंड के पाठा इलाके में पिता के कर्ज को पाटने के लिए बाल मजदूरी जन्म लेती है। विरासत में भी मिली मजदूरी भी इनकी उम्र नहीं देखती। कम से कम पांच हजार बाल श्रमिक पाठा इलाके में हैं। कई सरकारी विभागों के कार्य प्रभारी, ठेकेदार और स्टोन क्रेशर चलाने वाली संस्थाएं इन बाल श्रमिकों को 10-15 रुपए दैनिक मजदूरी देकर काम करा रही हैं। श्रम प्रवर्तन अधिकरी भी खुले तौर पर बाल श्रमिकों के बचपन को बचाने के लिए कोई सकारात्मक कदम नहीं उठा पा रहे हैं। आदिवासी कोल बाल श्रमिकों पर किए गए एक सर्वेक्षण में पता चला है कि क्षेत्र के पांच हजार से भी अधिक कोल बालक विभिन्न उद्योगों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों, कृषि एवं पशु चराने के कार्यों में दैनिक व मासिक मजदूरी पर लगे हुए हैं। सर्वेक्षण के मुताबिक विकास खंड मानिकपुर में 6 से 14 वर्ष की उम्र के स्कूल जाने लायक बच्चों की संख्या लगभग 40 हजार हैं। इनमें 20 हजार बालक निरक्षर हैं और आगे भी इनके विद्यालय जाने की कोई संभावना नहीं है। मानिकपुर ब्लाक के राजकीय प्राथमिक और जूनियर बेसिक विद्यालयों में कुल 17,600 बच्चों के दाखिले हैं, जबकि निरक्षर बच्चों की संख्या 14,319 है। इन बच्चों में से सर्वाधिक अनुसूचित जाति के हैं।

गांव के महाजन से मिले कर्ज का आम परिणाम यह होता है कि केवल ब्याज को चुकाते-चुकाते कर्ज लेने वालों की जिंदगी खत्म हो जाती है और उसकी अगली पीढ़ी को या दो-तीन पीढ़ियों तक को उसे चुकाना पड़ता है।

महाजन कर्ज के बदले यदि नकद राशि नहीं पाता है तो अनाज की मांग करता है। अगर कर्ज लेने वाला अनाज भी देने लायक नहीं है तो महाजन की बेगारी करनी पड़ती है।

इसी गांव के कल्लू ने बताया कि पीढ़ियों से वे इन दबंगों की मजदूरी कर रहे हैं। इसके पीछे कल्लू की पीढ़ियों से चली आ रही मजबूरी भी है। भगवानदास का एक दूसरा बंधुआ मजदूर है कल्लू। उसने बताया कि उसका पिता सनेही लगातार बारह वर्षों तक भगवानदास के यहां काम करता रहा। सनेही की मौत भगवानदास के यहां काम करते-करते हुई थी। भगवानदास ने फिर मुझे अपने यहां काम पर लगा दिया। एक साल से मैं भगवान दास का काम करता रहा, लेकिन मजदूरी के नाम पर वही मामूली अनाज मिलता रहा। जब हमने काम करने से मना कर दिया तो मेरे ऊपर 125 मन गेहूं का कर्ज निकाल कर बंधुआ मजदूरी करने के लिए बाध्य कर रहा है।

यह तथ्य है मध्य प्रदेश की सीमा से सटे भंवरपुर गांव का। इस गांव में घनघोर गरीबी है। यहां के लोग आए दिन दिल्ली, गुजरात और पंजाब के बड़े शहरों में पलायन कर जाते हैं। सरकार की ओर से 25 साल पहले इन गरीबों को पट्टे की जमीन मिली थी, लेकिन आज तक इनको अपनी जमीन पर कब्जा नहीं मिला। इन जमीनों पर गांव के दबंगों का कब्जा है। जिनको पट्टा मिला वे पिछले 25 सालों से तहसील का चक्कर काट रहे हैं, लेखपालों की चिरौरी कर रहें हैं, फिर भी इनको जमीन पर कब्जा नहीं मिला। यहां सामाजिक बदलाव के लिए काम करने वाली तमाम संस्थाएं और उसके लोग इनके लिए प्रयास कर रहें हैं और उम्मीद है कि इन गरीबों को जमीन पर कब्जा मिल भी जाए। हालांकि जो सच्चाई है वह यह है कि लेखपाल और तहसील के अन्य कर्मचारी, अधिकारी गांव के दबंगो के खिलाफ नहीं जा पा रहें हैं।

भगवानदीन ने बताया कि चंद दबंगों द्वारा लगातार किए जा रहे शोषण से हम लोग आजिज आ गए हैं। हम लोगों ने फैसला किया कि अब हम इनकी गुलामी नहीं करेंगे।

हमारा यह फैसला इन दबंगों को इतना नागवार गुजरा कि हम लोगों का अपने घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया है। इन लोगों ने गांव में मुनादी कराकर यह घोषणा कर दी कि जो लोग हमारी जमीन से होकर जाएंगे या हमारे खेतों में शौच करेंगे उनके हाथ-पैर तोड़ दिए जाएंगे। डर के मारे हम लोगों का घर से निकलना दूभर हो गया। आजाद भारत में इस तरह की घटनाएं निश्चित तौर पर चौंकाने वाली हैं, लेकिन बुन्देलखण्ड में यह सब कुछ हो रहा है। कुछ समाजसेवी संस्थाओं के लोगों ने इन पीड़ित परिवारों को लेकर तत्कालीन कमिश्नर के यहां गए। अपनी शिकायत दर्ज करायी। कमिश्नर ने उप जिलाधिकारी और क्षेत्रीय दरोगा को मौका मुआयना के लिए भेजा। सरकारी जांच की खानापूर्ति भी हुई लेकिन दुर्भाग्य है कि भंवरपुर गांव का 300 परिवार आज भी भयभीत होकर जी रहा है। बंधुआ मजदूरी के इस मामले को जांच अधिकारियों ने गांव की आपसी रंजिश बताकर इस कुप्रथा पर पर्दा डालने की कोशिश की।

कामता दलित है। उसने बताया कि उसका बेटा लाखन गांव के ही कुबेर पटेल के यहां एक साल तक लगातार काम किया। काम के बदले में मामूली मजदूरी मिलती थी जिससे उसके परिवार का पेट नहीं भरता था। आजिज आकर एक दिन लाखन ने कुबेर पटेल का काम करने से मना कर दिया। कुबेर लाखन के फैसले पर आग-बबूला होकर उसने लाखन पर मिट्टी का तेल छिड़ककर उसे जलाने की कोशिश की। कुबेर ने ऊपर से इसकी शिकायत नहीं करने की धमकी भी दी।

इन दुखियारों की फरियाद लेकर कमिश्नर के यहां जाने वालों में से भागवत प्रसाद बताते हैं कि भंवरपुर में 300 परिवारों की स्थिति बहुत ही चिन्ताजनक है। अगर कोई ईमानदार अधिकारी आता है तो वह इसकी जांच कराने की बात करता है, लेकिन सवाल यह है कि

छोटे-मोटे कर्ज के एवज में आदिवासियों की बहू-बेटियों को गिरवी रख लिया जाता है। रखैल बना लिया जाता है। उम्र जब ढलने लगती है तो या तो उनको छोड़ दिया जाता है या दूसरों के हाथों बेंच दिया जाता है, एक और संत्रास झेलने के लिए।

आजादी का मतलब क्या होता है, भोण्डी नहीं जानती। सरकार, शासन, प्रशासन, न्याय, मानवता क्या है, उसे नहीं पता। वह जानती है महज तीन सौ रूपये के लिए औरत बिकती है, उसकी अस्मत नीलाम होती है।

जांच करने वाले अधिकारी और कर्मचारी वही होते हैं जो भगवानदास और कुबेर पटेल जैसे लोगों के साथ ही उठते-बैठते हैं। ऐसे में जांच में सही तथ्य उभरकर बाहर आना नामुमकिन है।

जांच रिपोर्ट आने के बाद बांदा के जिलाधिकारी धीरज साहू ने बताया कि भंवरपुर गांव में कोई बंधुआ मजदूर नहीं हैं। उप जिलाधिकारी केबी अग्रवाल की जांच में यह तथ्य सामने आया है कि भंवरपुर गांव में कुल 125 परिवार रहते हैं। भगवानदास पटेल और हरप्रसाद साहू बड़े काश्तकार हैं। साहू ने छह महीने पहले अपने घर के सामने एक चबूतरा बनवा लिया। वहां से बैलगाड़ी का निकलना मुश्किल हो गया। झगड़े का असल जड़ यही है और गांव के दलित इसके विरोध में इन लोगों का काम करने से मना कर रहें हैं। इस जांच रिपोर्ट में कई छेद हैं। पहली बात यह कि भंवरपुर गांव में कुल 125 ही नहीं 300 दलितों का परिवार रहता है। दबंगों का जुल्म जिस फर्जी कर्ज के आधार पर चल रहा है उसका न कोई कागजात होता है और न ही कोई प्रत्यक्ष प्रमाण। सरकारी जांच के लिए दलित लोग अपने पक्ष में इस तरह का साक्ष्य कहां से लाएं जिसका जांच अधिकारी दस्तावेजीकरण कर सकें। ऐसे में बंधुआ मजदूरी की बात जांच अधिकारियों के सामने दब जाती है और सतही बातें ही ऊपर आ पाती हैं जो जांच का निष्कर्ष बन जाती हैं।

भू-दान : किसका कल्याण

विनोबा भावे के सामने भू-पतियों ने जो सेवाभाव प्रदर्शित किया, उसके पीछे उनका साश्वत चरित्र था, जिसे हम अवसरवादिता कहते हैं। भावे के भू-दान आंदोलन का आज जो हस्र है उसके पीछे इन तथाकथित भू-पतियों का ही हाथ है। यह आंदोलन आज पूरी तरह भू माफियाओं की गिरफ्त में है। नक्सल आंदोलनकारियों ने सबसे पहले भू-दान की

जमीनों के लिए ही अपनी लड़ाई शुरू की और आज नक्सलवाद को जो आक्रमक चेहरा हमारे सामने है, उसमें कहीं न कहीं अवसरवादी भू-पतियों का ही सबसे बड़ा हाथ है। यहां हमारा उद्देश्य नक्सलवाद की पैरोकारी का नहीं है, लेकिन यह तो सच है कि अगर भू-दान की जमीनों का गरीबों में वाजिब बंटवारा हो गया होता तो शयद भूमि संघर्ष से उपजे नक्सवाद को रोका जा सकता था।

ऐसे तमाम भूपति हैं जिन्होंने विनोबा भावे को अपनी जमीन दान में दे दी, लेकिन वह जमीन या तो रेतीली है, या उबड़-खाबड़ या अनुपजाऊ। कुछ तो ऐसे हैं जिन्होंने परोपकारिता दिखाते हुए जमीन तो दान कर दी, लेकिन आज भी उस पर काबिज हैं। व्यवहार में कभी भी अपना कब्जा उस जमीन से नहीं हटाया।

हमारे नीति नियंताओं को हर योजना लागू करते समय ऐसा लगता है कि फलां योजना समाज के सबसे निर्धन व्यक्ति को अपना लक्ष्य बना लेगी, लेकिन समाज के इन निचले पायदान के लोगों की सदियों से एक ही जैसी स्थिति बनी हुई है। आज भी किसी साहूकार, महाजन या जमींदार द्वारा दिया गया ब्याजरहित कर्ज या पेशगी (मजदूरी आदि के लिए) के रूप में दिया गया धन, उस परिवार को जिसने कर्ज या पेशगी ली है, कई पीढ़ियों तक बंधुआ मजदूर बनकर खून-पसीना एक करना पड़ रहा है, फिर भी कर्ज नहीं पूरा हो पाया। ये सूदखोर महाजन ऐसे-ऐसे हथकंडे अपनाते हैं, जिसका कोई तोड़ इन निरीह या गरीब परिवारों के पास नहीं होता।

आदिवासियों की गरीबी किसी से छिपी हुई नहीं है। अगर बारीक विश्लेषण किया जाय तो इन गरीबों के अंदर भी कई स्तर मौजूद हैं। हर कुनबे में गरीबी का अलग-अलग स्वरूप देखने को मिलता है। तय मानिये इन परिवारों को सरकारी ऋण नीति का कोई लाभ नहीं

बुंदेलखंड में फर्जी ;ण के भी कई मामले सामने आए। इस शातिर खेल में गांव के कुछ लोग और बैंक के कर्मचारी और अधिकारी भी शामिल होते हैं। गाहे-बगाहे अखबारों में भी इनके कारनामे प्रकाशित होते रहते हैं।

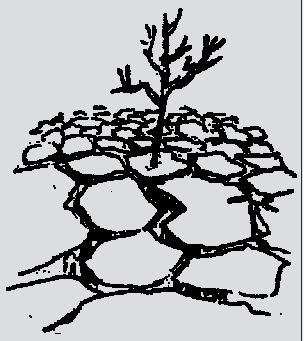

फर्जी कागजात बनाकर दूसरों के नाम पर ट्रैक्टर तक ले लेते हैं। मामला खुलते–खुलते भुक्तभोगी की जमीन तक नीलाम हो जाती है। माखनपुर गांव के एक जमीदार परिवार के साथ भी यही खेल हुआ।

इस दशा में सर्वेक्षण के दौरान शिक्षा क्षेत्र के प्राथमिक व जूनियर विद्यालयों में बच्चों का नामांकन, उपस्थिति तथा ड्राप–आउट के अनुपात का अध्ययन किया गया। इसी के साथ ही एक स्वयं सेवी संस्था द्वारा कराए गए पारिवारिक सर्वेक्षण में बालकों के आंकड़े एकत्र किए तथा तुलनात्मक स्थिति का विश्लेषण किया गया। विश्लेषण में पता चला है कि पाठा क्षेत्र के गरीब परिवारों के हजारों बच्चों सस्ती मजदूरी पर विभिन्न जगहों पर काम करते देखे जा रहे हैं। वन विभाग कोल बच्चों को ज्यादा से ज्यादा काम देने पर तवज्जो देता है। रेलवे के ठेकेदार भी बाल श्रमिकों पर काफी मेहरबान हैं। पत्थर खन्न से लेकर पत्थरो की लोडिंग–अनलोडिंग का काम खुलेआम बच्चों से लिया जा रहा है। दुखद तो यह है कि ये बच्चे शंकरगढ़, कबरई व भरतकूप के स्टोन क्रशर तथा पत्थर के खतरनाक खदानों में हाड़–तोड़ मेहनत कर रहे हैं। सैकड़ों बच्चे तो अपने मां–बाप के साथ काम कर रहे हैं। कई बच्चे तो इतने मजबूर हैं कि काम करने में असमर्थ माता–पिता के स्थान पर मजदूरी करके परिवार की जीविका चला रहे हैं।

ये हैं `माटी' के मोल

महोबा जिले के चरखारी क्षेत्र के संभ्रांत किसानों में राम प्रताप तिवारी भी गिनती होती है। 50 बीघा जमीन से भी अधिक के मालिक हैं। यह दिगर बात है कि यह भू–संपत्ति उनके पूर्वजों की उपार्जित है। राम प्रताप तिवारी भी प्राकृतिक आपदाओं से हलकात हैं। उनके लिए भी खेती करना उपले में घी सुखाने जैसा है। साल दर साल खेती से हो रहे घाटे से वह आजिज आ गए हैं। वह अपनी 50 बीघा जमीन बेचना चाहते हैं। पुश्तैनी जमीन को बेचने का कठोर फैसला लेने के बाद अब उनको खरीदार नहीं मिल रहे हैं। यह जमीन कभी सोना उगलती थी। पैदावार इतना बढ़िया होता था कि राम प्रताप तिवारी को कई

पीढ़ियां अपनी खेती-बाड़ी के कारण ही इलाके के सम्मानित लोगों में शुमार थी। खुद वह और उठाये भाई-बहन इसी जमीन की कमाई से पढ़ लिखकर बड़े हुए हैं। पिछले कई सालों से पड़ रहे सूखे ने अब हालत बिल्कुल बदल दिए हैं। लगभग हर साल खेती में हो रहा घाटा अब उनपर भारी पड़ने लगा है। वे कहते हैं कि अब खेती में घाटा ही घाटा है। खेती करना अब खतरनाक पेशा है। नुकसान बहुत हो गया। जिसके पास जीने का दूसरा जरिया है, वह अब खेती में हाथ नहीं डालना चाहता है। जाहं तक मेरा सवाल है- ना बाबा ना, खेती करना अब मेरे बस की बात नहीं हैं।

यह वेदना है 50 बीघा से ऊपर के काश्तकारी की। सीमांत और लघु किसानों की हालत तो और खराब है। लोग अपनी जमीन बेचकर उससे पिंड छुड़ाना चाहते हैं। बुंदेलखंड के लोग 1000 रुपए बीघा जमीन बेचने को तैयार बैठे हैं, लेकिन कोई खरीदने को तैयार नहीं हो रहा हैं। अगर उजाला के संपादक प्रताप सोमवंशी अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि टिकरिया के प्रमोद कुमार त्रिपाठी बताते हैं, इस साल वह अपने खेत में 7 किलोग्राम ही उपज ले पाया। उनका बीज भी नहीं लौटा। मनगवां के देवराज ने बहुत जतन से एक बीघा चना बोया, लेकिन उनके घर आया मात्र 3 किलो चना। प्रताप सोमवंशी कहते हैं कि बुंदेलखंड में जिस किसान के घर बाहर कमाने वाला कोई नहीं है, वह परिवार भुखमरी की कगार पर है या भुखमरी झेल रहा है।

पिछले साल बांदा जिले में 7 करोड़ 53 लाख रुपए के स्टांप बिके थे। इस वर्ष अब तक 6 करोड़ 86 लाख रुपए की रजिस्ट्री हो चुकी है। इसमें शहर और कस्बे की जमीन की रजिस्ट्री भी शामिल है। स्वभाविक रुप से गांवों में जिनकी माली हालत ठीक है वे बाहर की ओर भाग रहे हैं। यही कारण है कि बाहर-कस्बों की जमीने ऊंचे भाव पर धड़ाधड़ बिक।

सूखा, सरकारी नाफरमानी और अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अभावग्रस्त बुंदेलखंड के किसानों को केकेसी फौरी राहत तो दे देता है, लेकिन आगे चलकर जीवन को दुष्कर और भयावह बना दे रहा है।

रही हैं। प्रताप सोमवंशी कहते हैं कि गांवों की खेती वाली जमीनों का बाजार भाव इतना गिर गया है कि रजिस्ट्री की फीस से भी कम कीमत पर बिकने के लिए उपलब्ध जमीनों के कारण 'कौड़ी के भाव बिकने' का मुहावरा भी अब यहां के लोगों को मुंह चिढ़ा रहा है। सरकार द्वारा जिस जमीन की कीमत 10 हजार रुपए बीघा तय है उसे तीन हजार रुपए बीघा बेचने के लिए किसान ग्राहक तलाश रहे हैं।

देशभर में जमीन के भाव आसमान छू रहे हैं। आबादी और खेती के लिए जमीन कम पड़ती जा रही है। अर्थशास्त्र का नियम भी यहां असफल होते दिख रहा है। बुंदेलखंड के चित्रकूट जिले का ही उदाहरण लें, यहां के टिकरिया गांव में पांच वर्ष पहले जो जमीन 10 हजार रुपए बीघा बिक रही थी, वह अब डेढ़ से दो हजार रुपए बीघा उपलब्ध हैं उसका भी कोई खरीदार नहीं है। बड़ी-बड़ी जमीनों के मालिक भी दुर्दशाग्रस्त हैं। प्रताप सोमवंशी कहते हैं कि दो सौ बीघा जमीन के काश्तकार का जीवन स्तर किसी मामूली से दुकानदार से भी गया गुजरा है।

वर्ष 2004-2005 के एक आकलन के अनुसार बुंदेलखंड की 80 फीसदी आबादी खेती से जुड़ी है, लेकिन खेती वाले पूरे क्षेत्रफल कs 20 फीसदी हिस्से में से साल में दो फसलें ली जा सकती हैं। लगातार पड़े सूखे ने किसानों की कमर तोड़ कर रख दी है। सरकार तो दावा करती है कि सिंचित क्षेत्र में इजाफा हुआ है। पिछले 50 वर्षो में सिंचित क्षेत्र 15 फीसदी से बढ़कर 40 फीसदी हो गया हैं सरकारी आंकड़े नहरों की लंबाई, सरकारी नलकूपों की संख्या को आधार बनाकर तैयार किये जाते हैं। लेकिन सरकारी आंकड़ेबाज यह नहीं देखते कि नहरों में पानी कितने दिन रहा, कितने नलकूप पानी दे रहे हैं। असल में किसानों को जब पानी की जरूरत होती है तो नहरें सूखी रहती हैं, नलकूप बंद पड़े

बैंकों की कार्यप्रणाली भी संदिग्ध है जिस किसान के पास बैंक में गिरवी रखने के लिए एक इंच जमीन न हो उसको भी ऋण दे दिया गया।

रहते हैं। भूगर्भीय जलस्तर के लगातार गिरने से कई सरकारी नलकूप तो बेकार हो गए हैं। यहां का किसान परम्परागत तौर तरीके से ही खेती कर रहे हैं।

ट्रैक्टर बने तबाही का सामान

किसानों के लिए ट्रैक्टर उसका अब साथी नहीं रहा। ऐसा यहां के एक अखबार में प्रकाशित समाचार से पता चला। किसानों के लिए ट्रैक्टर रखना हाथी पालने से भी महंगा है। अमर उजाला में प्रकाशित इस सचाई को हम हूबहू अपनी किताब में दे रहे हैं। बांदा के बड़ोखर गांव का रकबा 2400 बीघा जोत है। इस गांव में 22 ट्रैक्टर हैं। यह सूचना गांव का वैभव गिनाने के लिए नहीं, उस पर लदे दुख के पहाड़ का बोझ बताने के लिए है। इस गांव में एक भी आदमी खेती की कमाई से ट्रैक्टर की किश्त भरने की औकात में नहीं है। अलबत्ता, इस गांव में दो लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने ट्रैक्टर तो बचा लिया, मगर खुद भूमिहीन होने की कीमत पर। अकेले बांदा में प्रतिवर्ष 300 ट्रैक्टर और पूरे बुंदेलखंड में 1500 से अधिक ट्रैक्टर हर साल बिक रहे हैं।

दरअसल खेती के लिए उपयोगी ट्रैक्टर बुंदेलखंड में किसानों के लिए तबाही का एक सामान है। लाखों मझोले किसानों के लिए ट्रैक्टर रखना हाथी पालने से ज्यादा महंगा पड़ रहा है। सात जिलों की तहसीलों में सैकड़ों ट्रैक्टर नीलामी के लिए खड़े हैं। सूखे से तबाह किसानों के लिए पेट भरना भारी पड़ रहा है, ट्रैक्टर की किश्त कहां से आए। पूरे इलाके में एक गांव भी ऐसा नहीं है, जहां ट्रैक्टर से बरबाद हुए लोग न मिलें। जो बचे हैं, मुसीबत तरह-तरह से उनके दरवाजे पर भी दस्तक दे रही है।

ट्रैक्टर के खर्चे और उससे होने वाली आय के बीच इतना विरोधाभास है कि किसान के

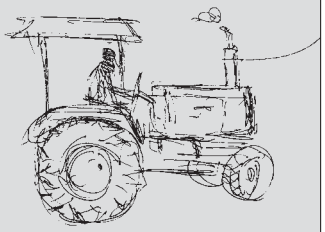

बंधुआ मजदूर सूखे, अकाल और बाढ़ के कारण नहीं पैदा होते हैं, इसमें अक्षम सरकार का भी बड़ा हाथ होता है, हां यह भी उतना ही सच है कि इसके पीछे गरीबी का दुष्चक्र ही होता है। समस्याओं की जड़ में सरकारों का पाखंड होता है।

जमींदारी उन्मूलन को लागू हुए लंबा अरसा हो गया, लेकिन सच कहें तो बुन्देलखंड में आज भी नवसामंती अवशेष कायम है। कई गांवों में साहूकार और बड़े काश्तकार दलितों और आदिवासियों से नाममात्र का कर्ज देकर बंधुआ मजदूरी कराते हैं।

पास पिसने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। बुंदेलखंड में एक ट्रैक्टर 60 बीघे फसल की उपज खा जाता है। डीजल के खर्चे छोड़ दिए जाएं तो एक ट्रैक्टर पर लगभग 90 हजार रुपए का सालान खर्च आता ही है। लगभग साढ़े सात हजार रुपए महीना कम से कम ट्रैक्टर पालने की कीमत है। सूखे का संकट झेल रहे इस तबाह हिस्से में इतनी रकम कम से कम 60 बीघे की उपज से ही मिल सकती है। अगर आपके पास ट्रैक्टर है तो इसमें सालाना 18 हजार रुपए ड्राइवर का वेतन, 35 हजार रुपए ब्याज, 25 हजार रुपए डिप्रेशिएसन वैल्यू और 15 हजार रुपए मरम्मत आदि में लगना तय है। हर साल चार हजार रुपए का टायर घिस जाता है। अब डीजल का व्यय 32 हजार से 50 हजार रुपए जरूरत के हिसाब से लगना तय है। ट्रैक्टरों की बहुलता इतनी है कि एक-एक गांव में सात-आठ से लेकर 25 ट्रैक्टर तक हैं। काम कहीं है नहीं, ऐसे में किसान की कमर ट्रैक्टर पालन में ही टूटी जा रही है।

एजेंसियों का उजला पक्ष यह है कि उनके ट्रैक्टर बिक रहे हैं। बैंक नीलामी करके वसूली कर लेते हैं। दलाल नाम की इकाई का तंत्र यहां भी अनिवार्य है। उसके हिस्से में सिर्फ चांदी है। किसान के लिए ट्रैक्टर कभी बेरोजगारी काटने का जरिया है, तो कहीं खेती के लिए जरूरत और इस सबसे ऊपर ट्रैक्टर उसकी प्रतिष्ठा से भी जुड़ा है। ऐसे में बदहाल किसान मरते मर जाता है, लेकिन ट्रैक्टर नीलाम न हो, यही उसकी आखिरी इच्छा रहती है। सूखे ने हालात इतने दूभर कर दिए हैं कि अगर परदेश में कमाने वाला कोई नहीं है तो ट्रैक्टर की किश्त भरना नामुमकिन है। इन इलाकों में थोड़े से किसान हैं जो बालू ढोने और दूसरे ठेकेदारों के साथ लगे हैं, उनके हाल इन किसानों से थोड़ा बेहतर हैं।

किसानों के बीच दशकों से काम कर रहे एबीएसएस के भागवत प्रसाद बताते हैं कि इस

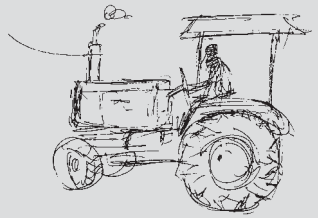

इलाके में एक ट्रैक्टर को कई बार बेचने के मामले भी हैं। किसान ने ट्रैक्टर लिया, किश्त नहीं दे पाया। एजेंसी वाले दबंगों की मदद से ट्रैक्टर वापस ले जाते हैं। नीलामी में दूसरे को बेचने के बाद जो रकम वसूल नहीं हो पाती, उसके लिए किसान पर फिर से दबाव बनाते हैं। किसानों के सवालों से जुड़े प्रेम सिंह कहते हैं कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश और बुंदेलखंड में अलग-अलग भौगोलिक परिस्थितियां हैं। सरकार का यहां के लिए नए तरीके से सोचना होगा, नहीं तो इस इलाके को नष्ट होने से कोई नहीं बचा पाएगा। सरकार की इकाइयां और दलाल दोनों गिद्ध की तरह सूखे की मार से मर रहे किसानों का मांस नोचने का काम कर रही हैं।

सूखा

भंवरा तोरा पानी गजब कर जाये
गगरी न फूटे ख़सम मर जाये।

बुंदेलखंड में पानी कितना कीमती है इसका सटीक उदाहरण यहां दी जाने वाली ये दो पंक्तियां हैं। लगातार पांच वर्ष से सूखा झेल रहे बुंदेलखंड की मौजूदा स्थिति को इस साल हुई वर्षा से भी समझा जा सकता है। बुंदेलखंड का हर जिला इस साल भी इतना प्यासा है कि लगता नहीं कि हाल-फिलहाल यहां के हालात सुधरने वाले हैं। इस साल बांदा जिले में औसत की आधी बारिश भी नहीं हुई। यहां पर औसत वर्षा 902 मिलीमीटर होती है लेकिन इस साल यहां 448 मिमी यानी 49.99 प्रतिशत बारिश हुई है। चित्रकूट में भी औसत वर्षा 902 मिमी होती है, लेकिन यहां भी मात्र 14.41 फीसदी अर्थात 130 मिमी, हमीरपुर में 864 की तुलना में 356, 40.27, महोबा में 864 की तुलना में 350, 40.50,

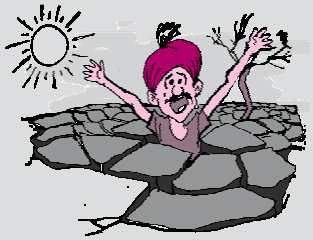

भंवरपुर गांव के गरीबों को सरकार की ओर से 25 साल पहले इन गरीबों को पट्टे की जमीन मिली थी, लेकिन आज तक इनको अपनी जमीन पर कब्जा नहीं मिला। इन जमीनों पर गांव के दबंगों का कब्जा है।

बुंदेलखंड की 80 फीसदी आबादी खेती से जुड़ी है, लेकिन खेती वाले पूरे क्षेत्रफल के 20 फीसदी हिस्से में से साल में दो फसलें ली जा सकती हैं।

जालौन में 862 की तुलना में 350 और ललितपुर में 1044 की तुलना में मात्र 560 मिमी यानी 53.63 मिमी वर्षा रिकार्ड की गई। चित्रकूट में तो स्थिति यह है कि खरीफ की 80 फीसदी फसल बर्बाद हो गयी और रबी में भी यही स्थिति रहने वाली है। घटते भूगर्भीय जलस्तर को लेकर पहले ही चेतावनी पा चुके बुंदेलखंड के पठारी भू-भाग में अप्रैल आते-आते पेयजल की किल्लत विकराल होने लगती है। दो-चार बाल्टी पानी के लिए लोगों को घंटों मशक्कत करनी पड़ती है या फिर दूर स्थित जलस्रोतों का सहारा लेकर अपनी जरुरतें पूरी करनी पड़ती हैं। दिल्ली की एक संस्था द्वारा कराए गए सर्वे में बुंदेलखंड के हमीरपुर, बांदा, ललितपुर, झांसी और जालौन के बारे में बताया गया कि यहां जमीनी जलस्तर बहुत तेजी से नीचे जा रहा है। प्रति वर्ष यहां का जलस्तर 5 से लेकर 10 मीटर तक नीचे जा रहा है।

अधिकतर ताल-तलैया सूख चुकी हैं। अन्य पारंपरिक जलस्रोतों जैसे कुएं तथा बावड़ी भी अब लुप्तप्राय हो चले हैं। हमीरपुर, जालौन, ललितपुर, झांसी और बांदा आदि शहरों में कुओं में शहर का कचरा भरा जा रहा है। इन शहरों में इक्का-दुक्का कुएं इसलिए बचे हुए हैं क्योंकि वहां लोगों द्वारा पूजा की जाती है। घटते जलस्तर के कारण ज्यादातर निजी हैंडपम्प या तो जवाब दे चुके हैं या फिर इनसे बहुत कम पानी निकल रहा है। बुंदेलखंड में यह खतरनाक हालात बनने में कई साल लगे हैं। बीच-बीच में इसको लेकर आवाज उठती भी रही, लेकिन स्थिति इतनी विकट होती जा रही है कि अब न तो किसी के घर में पानी दिखेगा और न तो किसी की नजर में।

सूख गए 435 तालाब

बुंदेलखंड क्षेत्र में भूमिगत जल के बेलगाम दोहन से कई जनपदों में खतरे की घंटी बज

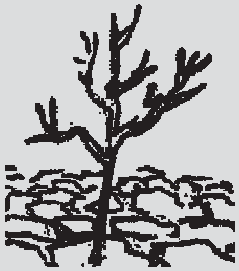

उठी है। हरे भरे जंगलों, पहाड़ों व नदियों से खूबसूरत इस क्षेत्र में ग्रीन कवर के विनाश के चलते भीषण जल संकट गहरा गया है। भूगर्भ जलस्तर 20 से 30 फीट नीचे सरक गया है। भीषण गर्मी के कारण केवल हमीरपुर के 435 तालाब सूख गए हैं। मात्र साढ़े पांच दशक पहले हमीरपुर सहित पूरा बुंदेलखंड क्षेत्र 33 प्रतिशत वनों से आच्छादित था। पांच हजार से अधिक तालाबों व पोखरों से वन, वन्य जीव और अन्य लोग अपनी जरूरत पूरा करते थे। चार सौ से अधिक पोखर व तालाब रख-रखाव के अभाव में अपना स्वरूप ही खो चुके हैं।

सैकड़ों जलस्रोतों में पानी नहीं के बराबर है। गुजरे 58 सालों में सिंचाई व्यवस्था को नलकूपों से जोड़ा गया। तब से लगातार भूगर्भीय जल का दोहन होता रहा। इसके कारण भूगर्भ जलस्तर में भारी गिरावट आई और साथ ही प्रकृति में भी अजीबोगरीब परिवर्तन हुआ। हमीरपुर, सुमेरपुर, महोबा, कबरई, बांदा, ललितपुर, जालौन, झांसी व मानिकपुर आदि नगरों में कल कारखानों, स्टोन क्रेशरों ने भी इस विनाश के बदलावों में बड़ा योगदान दिया। हरे-भरे पहाड़ों को वृक्षविहीन कर दिया गया।

वर्ष 1993-94 में ही तापमान यहां 45.2 डिग्री सेंटीग्रेड तथा न्यूनतम तापमान 4.2 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो गया था। तापमान में इन दिनों लगातार वृद्धि जारी है। इसके अगले साल तापमान 47 डिग्री सेंटीग्रेट तथा न्यूनतम 3 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो गया था। जिला राजकीय अस्पताल के वरिष्ठ फिजिशियन और पर्यावरणप्रेमी डॉ. वीके श्रीवास्तव ने बताया कि बेतवा नदी में मोरंग खनन तथा जंगलों के विनाश होने से ही इस क्षेत्र में तापमान में अभूतपूर्व बदलाव हुआ है। समाजसेवी जलीस खान ने बताया कि तीन दशक के भीतर करोड़ों वृक्ष लगाने के दावे कागजों में किये गये मगर हरे भरे जंगल वन माफियाओं ने

पिछले साल बांदा जिले में 7 करोड़ 53 लाख रुपए के स्टांप बिके थे। इस वर्ष अब तक 6 करोड़ 86 लाख रुपए की रजिस्ट्री हो चुकी है। इसमें शहर और कस्बे की जमीन की रजिस्ट्री भी शामिल है।

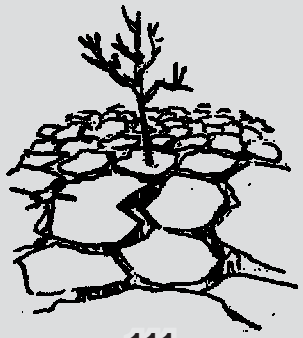

जब गरीब गुलामी के खिलाफ लामबंद हुए तो दबंगों ने गांव में मुनादी कराकर यह घोषणा कर दी कि जो लोग हमारी जमीन से होकर जाएंगे या हमारे खेतों में शौच करेंगे उनके हाथ-पैर तोड़ दिए जाएंगे। डर के मारे हम लोगों का घर से निकलना दूभर हो गया।

तहस-नहस कर इस क्षेत्र में बहुत बड़ा संकट खड़ा कर दिया है। आंकड़ों के मुताबिक जिले के कुरारा ब्लाक में 97 तालाब सूख गये हैं। वहीं सुमेरपुर 63, मौदहा 18 मुस्करा 35, राठ 73, गोहांड 111 और सरीला क्षेत्र में 38 तालाब भीषण गर्मी के चलते सूख गये हैं।

सूखे का खैरात बनाम नुकसान की भरपाई

बुंदेलखंड के किसान सूखे को दैवीय आपदा कम सरकार की गलत नीतियों व लटकी पड़ी परियोजनाओं का नतीजा ज्यादा मानते हैं। राहत के नाम पर 4 और 50 रुपए के चेक बांटा जाना किसानों को बहुत नागवार गुजरता है। इस संबंध में किसानों का कहना है कि उन्हें यह 'खैरात' नहीं बल्कि अपने नुकसान की भरपाई चाहिए। क्या सरकार बता सकती है कि 4 और 50 रुपए से क्या भला हो सकता है। सूखे पर लगातार नजर रखने वाले पुष्पेंद भाई बताते हैं कि पूरा बुंदेलखंड अंतर्मुखी सूखे से जूझ रहा है। तमाम स्थानों पर फसलें तो लहलहाती दिखाई देती हैं लेकिन उत्पादन बहुत कम होता है। सरकारी मशीनरी फसलें देखकर सर्वे कर लेती हैं। यह दैवीय आपदा नहीं, बल्कि सतही सरकारी नीतियों व अधूरी पड़ी परियोजनाओं की देन है। किसानों को राहत के नाम पर सरकार सिर्फ छलावा कर रही है। किसी बड़ी फैक्ट्री का नुकसान हो तो उसका सर्वे कराकर भरपूर भरपाई की जाती है, लेकिन किसानों के मामले में दूसरा रवैया है। महोबा जिले के पहाड़िया गांव के किसान रामकुमार सिंह ने ट्रैक्टर के लिए एक लाख चालीस हजार रुपए कर्ज लिया। अब तक वह एक लाख साठ हजार रुपए बैंक को दे चुके हैं, फिरभी वसूली की आरसी उनके नाम काट दी गई है। एक दाने से अनाज के सौ दाने पैदा करने वाला किसान भूखों मर रहा है और सिर्फ उसको दिलासा दिया जा रहा है।

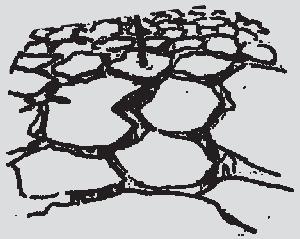

इन दस गांवों की प्यास कैसे बुझेगी

हमीरपुर जिले में सवा तीन करोड़ लागत की निर्माणाधीन खण्डेह ग्रामीण पेयजल की पुनर्गठन योजना का निर्माण कार्य लटक गया है। एक साल देखते-देखते बीत गया लेकिन अभी काम शुरू नहीं हो पाया है। कोई दो दशक पीले बांदा व हमीरपुर जिलों के 23 समस्याग्रस्त गांवों को पेयजल मुहैया कराने के लिए तकरीबन एक करोड़ की धनराशि खर्च कर एक खण्डेह ग्रामसमूह पेयजल योजना तैयार करायी गयी थी। योजना का शुभारम्भ करने के बाद बांदा के सीमावर्ती 15 ग्रामों को तो किसी तरह पीने का पानी मिलने लगा, लेकिन हमीरपुर जिले के मौदहा ब्लॉक के बेहद समस्याग्रस्त 10 गांवों को पानी पिलाने से पहले ही यह योजना बोल गयी। कई किलोमीटर तक बिछाई गयी पाइप लाइनें भी एक-एक कर क्षतिग्रस्त हो गयी हैं। हमीरपुर जिले के कपसा, गुसियारी, छांनी, खण्डेह, इंचौली, नायकपुरवा, रतवा, सिरसी, सिजवाही और बक्छा गांवों में भीषण पेयजल संकट है। इसको देखते हुए जल निगम निर्माण शाखा ने इन गांवों के लिए खण्डेह पुनर्गठन पेयजल योजना तैयार की। तीन करोड़ छब्बीस लाख की यह योजना पिछले साल शुरू भी हो गया, लेकिन पता नहीं किन कारणों से अचानक एक दिन बंद हुआ तो आज तक बंद पड़ा है। विभाग के इंजीनियर बताते हैं कि नलकूप के लिए बोरिंग सबसे बड़ी समस्या है। जल निगम की यांत्रिक शाखा ने नलकूप के लिए बोरिंग की मगर दो बार उसके यह प्रयास फेल हो गये। कभी पत्थर पड़ने से बोरिंग फेल हुई तो कहीं पर खारा पानी के वजह से यांत्रिक शाखा को बुरी तरह असफलता हाथ लगी। फिलहाल जो स्थिति है उससे यह नहीं लगता कि इस गर्मी में पेयजल समस्याग्रस्त 10 गांवों को पीने का पानी मिल पाएगा।

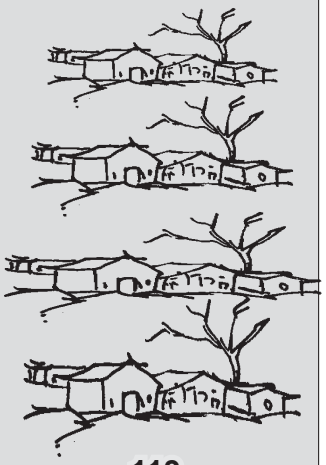

जांच करने वाले अधिकारी और कर्मचारी वही होते हैं जो भगवानदास और कुबेर पटेल जैसे लोगों के साथ ही उठते-बैठते हैं। ऐसे में जांच में सही तथ्य उभरकर बाहर आना नामुमकिन है।

बुंदेलखंड के पाठा इलाके में पिता के कर्ज को पाटने के लिए बाल मजदूरी जन्म लेती है। विरासत में भी मिली मजदूरी भी इनका उम्र नहीं देखती। कम से कम पांच हजार बाल श्रमिक पाठा इलाके में हैं।

हर गांव को मिल सकता है पानी

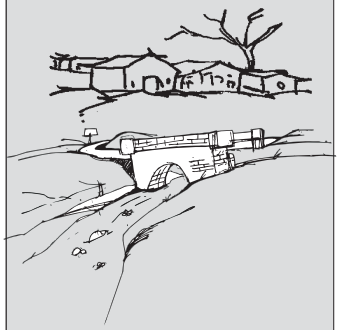

राजस्थान के रेगिस्तानी हलाकों में कुंडियों का प्रयोग आम है। बाड़मेर जिले में औसतन 100 मिमी वर्षा होती है। रेगिस्तान में कुंआ जैसा बनाकर बारिश के पानी को एकत्रित करने की पुरानी परंपरा है। इन्हीं कुओं को कुंडियां कहते हैं। जिस क्षेत्र में 100 मिमी बारिश होती है, वहां एक हेक्टेयर में कुंडियां बनाकर सालभर के लिए आसानी से 10 लाख लीटर पानी एकत्रित किया जाता है। खाना बनाने और पीने में प्रतिदिन आमतौर पर एक आदमी 15 लीटर पानी इस्तेमाल करता है। ऐसे में एक हेक्टेयर की कुंडी से 182 लोगों को पीने का पानी उपलब्ध कराया जा सकता है। यह औसत उन जगहों के लिए है जहां सालभर में 100 मिमी बारिश होती है। बुंदेलखंड में औसतन 1100 से 1200 मिमी बारिश होती है। अर्थात् बुंदेलखंड के गांवों में इस तरह की कुंडी बनाकर 11-12 गुना पानी एकत्रित किया जा सकता है। मतलब दो हजार से अधिक लोगों के लिए एक कुंडी से सालभर के लिए पीने के लिए पानी का इंतजाम किया जा सकता है। औसत बारिश का पानी एकत्रित कर लिया जाए और इस कार्य के लिए दो-तीन हेक्टेयर भूमि मिल जाए तो सिंचाई की जरूरतें भी काफी हद तक पूरी की जा सकती हैं। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि सरकार ऐसा चाहे और बुंदेलखंड के लोग इसके लिए मन बना लें।

बुंदेलखंड एक बार फिर सूखे की चपेट में है। इस इलाके के लिए यह कोई अब नयी बात नहीं है। बस कुछ खास यह होता है कि अखबार लिख देते हैं कि इस साल जैसा सूखा तो पिछले 50 वर्षो में कभी नहीं पड़ा। अर्थात् सूखे की भयावहता कम-अधिक

होती रहती है, जबकि सच तो यह है कि सूखे की भयावहता हर साल बढ़ रही है, क्योंकि बुंदेलखंड में ऊपरी या भू-जलस्तर बनाए रखने के लिए न जाने कितने सालों से कुछ नहीं हो रहा है। यह चिन्ता न तो जनता करती है और न ही सरकार। भू-जलस्तर लगातार नीचे जा रहा है और पोखर, तालाब, नलकूप और नहरें धीरे-धीरे बेकार होते जा रहे हैं।

सूखे की स्थिति से निपटने के लिए राज्यों को मदद देने का निर्धारण वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर होता है। 11वें वित्त आयोग ने राज्यों की आपदा सहायता निधि में केन्द्र और राज्य का योगदान का निर्धारण कर केन्द्र का योगदान 75% और राज्य का योगदान 25% कर दिया। सवाल यह है कि आपदा सहायता निधि का सही क्रियान्वयन हो रहा है या नहीं। बुंदेलखंड के सभी जिलों की स्थिति को देखकर तो ऐसा नहीं लगता। किसान कर्ज से मर रहा है तो गरीब लोग भूख से। ऐसा इसलिए है कि राज्य सरकार बुंदेलखंड के लिए आर्थिक प्रबंधन में फेल हो गयी है। आर्थिक कुप्रंधन ही इन मौतों के लिए दोषी है। प्रशासनिक स्तर पर प्राप्त राशि का उपयोग तक नहीं होता। अगर कहीं होता भी है तो बस खानापूर्ति की तरह।

कम से कम 7300 करोड़ मिले तो बदल सकती है तस्वीर

बुंदेलखंड की और आर्थिक अस्तियां विदर्भ से कहीं गई गुजरी हैं। विदर्भ महाराष्ट्र में स्थिति है। बुंदेलखंड उत्तर प्रदेश-मध्य प्रदेश में बंटा हुआ है। विदर्भ में 11 जिले हैं और बुंदेलखंड में 23 है। इसमें सात जिले उत्तर प्रदेश में पिछले पांच वर्षो से लगातार सूखा बाढ़ की मार झेल रहे बुंदेलखंड की लिए कम से कम 7300 करोड़ की दरकार है।

लोग अपनी जमीन बेचकर उससे पिंड छुड़ाना चाहते हैं। बुंदेलखंड के लोग 1000 रुपए बीघा जमीन बेचने को तैयार बैठे हैं, लेकिन कोई खरीदने वाला नहीं है।

आदिवासियों की गरीबी किसी से छिपी हुई नहीं है। अगर बारीक विश्लेषण किया जाय तो इन गरीबों के अंदर भी कई स्तर मौजूद हैं। हर कुनबे में गरीबी का अलग-अलग स्वरूप देखने को मिलता है।

बुंदेलखंड का अपना अलग महत्व है, लेकिन पिछड़ेपन गरीबी के लिए यह इलाका जाना है। बुंदेलखंड का क्षेत्रफल 2961.31 हेक्टेयर हैं। इसमें मात्र 1881.20 हेक्टेयर कृषि योग्य हैं। सिर्फ 783 हेक्टेयर भूमि ही सिंचित है। 1 हजार हेक्टेयर नहरों से और मात्र 43.95 हजार हेक्टेयर राजकीय नलकूपों से सिंचाई होती है। 33.42 हजार हेक्टेयर की सींच निजी नलकूप करते हैं। 224 हजार हेक्टेयर में तालाब और झील आदि हैं।

247.63 हजार हेक्टेयर में जंगल है। खनिज संपदा की भरमार है। पहाड़ों के पत्थर और नदियों की बालू से प्रतिवर्ष कई करोड़ रुपए का राजस्व सरकार के खजाने में जाता है। सिर्फ यही राजस्व अगर पूरा का पूरा इस क्षेत्र के विकास में खर्च कर दिया जाए तो बदहाल बुंलेलखंड की तस्वीर बदल जाएगी।

बुंदेलखंड की काया पलट के लिए लगातार नजर और दिलचस्पी रखने वाले विशेषज्ञों का अनुमान है कि लगभग 7300 करोड़ रुपए का पैकेज यहां की तकदीर और तस्वीर बदल सकता है। इसमें किसानों पर लगे कृषि और इससे संबंधित उद्योगों का कर्ज तथा बिजली बकाया बिल के लिए 1500 करोड़ रुपए की दरकार है। पांच से 10 वर्ष अवधि के लिए ब्याज मुक्त कर्ज के लिए 2000 करोड़ और सिंचाई योजनाओं के लिए 1000 करोड़ की जरूरत है। भूमिगत जल संरक्षण और संवर्धन पर 500 करोड़ रुपए खर्च किए जाने चाहिए।

प्रत्येक गांव में प्रोसेसिंग चूनिट स्थापित हो। जो कम से कम पांच लाख की हो। देशी बीजों के संरक्षण और संवर्धन तथा जड़ी-बूटियों की पैदावार और संरक्षण के लिए 200 करोड़ लिए जाने चाहिए। वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों से भी यहां की बदहाली पर लगाम लगाई जा सकेगी। इसके लिए कम से कम 100 करोड़ की दरकार हैं।

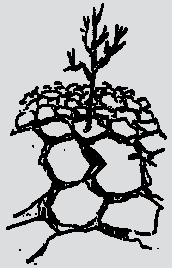

बुंदेलखंड को विदर्भ जैसे पैकेज के सवाल पर किसान और अध्यापक डॉ० हरिमोहन कहते हैं कि बुंदेलखंड की विषम परिस्थितियों का फौरी समाधान 'विशेष पैकेज' हो सकता है। लंबे समय तक या भविष्य में किसान खुशहाल हो जाएंगे ऐसा नहीं है। यहां पर किसानों के लिए सिंचाई सुविधा, खरीद केन्द्र और खेती से जुड़ी अन्य आधारभूत संरचनाओं को दुरुस्त किये बगैर केवल विशेष पैकेज से कुछ ठोस नहीं होने वाला है। सरकार की इच्छाशक्ति और प्रशासनिक ईमानदारी भी जरूरी है। क्योंकि केन्द्र से विदर्भ के सात जिलों के लिए 3750 करोड़ रुपए का विशेष पैकेज मिला, फिर भी पैकेज मिलने से लेकर अब तक और 107 किसानों ने वहां खुदकुशी कर ली। इसलिए केवल विशेष पैकेज को किसानों की समस्याओं का समाधान मान लेना फिर किसानों को धोखा देने जैसा है।

कुछ इस तरह हो पैकेज की तस्वीर

1- कृषि एवं कृषि आधारित उद्योग ऋणों एवं बिजली बकाया की माफी 1500 करोड़

2- किसानों को ब्याज रहित कर्ज के लिए (5 से 10 वर्ष ब्याज मुक्त) 2000 करोड़

3- सिंचाई योजनाएं (स्वनियंत्रित) 1000 करोड़

4- भूमिगत जल संरक्षण एवं संवर्धन (पुराने व नए तालाब और कुओं का पुर्ननिर्माण) 500 करोड़

5- प्रत्येक गांव में प्रोसेसिंग यूनिट स्थापना (पांच लाख प्रति) 2000 करोड़

6- जैव विविधता संरक्षण (देशज बीजों का संरक्षण एवं संवर्धन तथा जैविक खादों

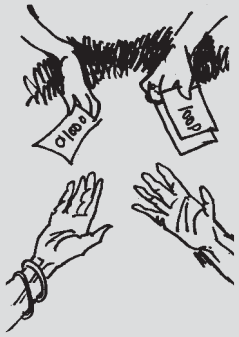

बुंदेलखंड के किसान सूखे को दैवीय आपदा कम सरकार की गलत नीतियों व लटकी पड़ी परियोजनाओं का नतीजा ज्यादा मानते हैं। राहत के नाम पर 15 और 50 रुपए के चेक बांटा जाना किसानों को बहुत नागवार गुजरता है।

	व जड़ी-बूटियों का विकास, उत्पादन व संरक्षण)	200 करोड़
7-	वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का प्रयोग व संवर्धन	100 करोड़
	योग	7300 करोड़

नोट- कृषि संबधित ऋण और प्रोसेसिंग यूनिट स्थापना मद की राशि सरकार को निश्चित अवधि में वापस हो जाएगी।

बुंदेलखण्ड और खेती किसानी ....

जिले –चित्रकूट, बांदा, महोबा, हमीरपुर, झांसी और ललितपुर

जरूरतमंद लोगों को बैंक से कोई राहत नहीं मिलती और वे तो बस इंतजार में खड़े दिखते हैं।

क्षेत्रफल - 29418 वर्ग किलोमीटर (उत्तर प्रदेश का 12.21 फीसदी भू-भाग)

आबादी - 8232847 उत्तर प्रदेश का 4.95 प्रतिशत
(वर्ष 2000 के जनगणना के अनुसार)

वृद्धिदर - 22.31 प्रतिशत (प्रति 10 वर्ष में)

घनत्व - 280

लिंगानुपात - 898 महिलाएं (प्रति एक हजार पुरूष पर)

ग्रामीण जनसंख्या - 77.61 प्रतिशत

किसान

सीमांत किसान - 50 प्रतिशत (जिनके पास 1 हेक्टेयर से कम भू-जोत है)

छोटे किसान - 25 फीसदी (जिनके पास 1-2 हेक्टेयर के बीच भू-जोत हैं)

भू-जोत का असमान बंटवारा

लगभग 72 फीसदी किसान परिवारों के पास जोतों के कुल क्षेत्रफल का मात्र 32 प्रतिशत है।

0.9 फीसदी बड़े किसानों के पास 7 प्रतिशत कृषि क्षेत्र हैं।

बुंदेलखंड में औसत जोत 1.7 हेक्टेयर है।

कार्यबल

मुख्यकर्मकार 68.58 प्रतिशत।

(इसमें पुरूष 67 फीसदी और महिलाएं 33 फीसदी हैं।)

मार्जिनल कर्मकार - 31.42 प्रतिशत

(इसमें पुरूष 33 फीसदी और महिलाएं 67 फीसदी हैं।)

74.55 प्रतिशत कर्मकार या तो किसान या खेत मजदूर हैं।

84.28 फीसदी मार्जिनल कर्मकार किसान और खेत मजदूर हैं।

मात्र 4 फीसदी लोग ही संगठित क्षेत्र में लगे हुए हैं।

कुल कार्यबल	32, 48, 750
ग्रामीण	80 प्रतिशत

बुंदेलखंड में एक ट्रैक्टर 60 बीघे फसल की उपज खा जाता है। डीजल के खर्चे छोड़ दिए जाएं तो एक ट्रैक्टर पर लगभग 90 हजार रुपए का सालाना खर्च आता ही है। लगभग साढ़े सात हजार रुपए महीना कम से कम ट्रैक्टर पालने की कीमत है।

किसी बड़ी फैक्ट्री का नुकसान हो तो उसका सर्वे कराकर भरपूर भरपाई की जाती है, लेकिन किसानों के मामले में दूसरा रवैया है।

किसान	47 प्रतिशत
खेत मजदूर	25 प्रतिशत
संगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूर	4 प्रतिशत

भूमि उपयोग

कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल - 29,14,806 हेक्टेयर

बुवाई वाला क्षेत्रफल - 20, 06, 017 हेक्टेयर (68 प्रतिशत)

एक बार से अधिक खेती वाला क्षेत्रफल - 3,54,556 हेक्टेयर

फसल की तीव्रता - 119

जंगल - 2,29,732 हेक्टेयर (7.75 प्रतिशत)

बंजर भूमि - 4.01 प्रतिशत

कृषि योग्य बेकार भूमि - 5.29 प्रतिशत

चारागाह - 0.18 प्रतिशत

परती भूमि - 6.67 प्रतिशत

फसल

65-80 फीसदी कृषि भूमि खरीफ में बगैर बोये रहती है।

खरीफ के अंतर्गत 51 प्रतिशत में धान, 27 प्रतिशत में दलहन और 27 प्रतिशत में तिलहन बोया जाता है।

रबी फसल में मुख्यतः गेंहूं, चना और मटर बोये जाते हैं।

सिंचाई

कुल सिंचित क्षेत्र – 41 प्रतिशत

स्रोत

नहर	50 प्रतिशत
सरकारी नलकूप	4 प्रतिशत
व्यक्तिगत संसाधनों से	7 प्रतिशत
अन्य जलस्रोत से	41 प्रतिशत

जल प्रवाह

जल प्रवाह मुख्य रूप से बुंदेलखण्ड की नदियों, उनकी सहायक नदियों और मौसमी (बरसाती) नालों के जरिये होता है।

बुंदेलखण्ड का ढलान मुख्यतः उत्तर और उत्तर-पूर्व की ओर है।

जलमार्गों में प्रवाह मानसून और मौसम पर निर्भर करता है।

जलस्रोतों की उपलब्धता

औसत जल वृष्टि

800-1000 मिमी (41 प्रतिशत से 155 प्रतिशत के मध्य)

नदियां

केन, बेतवा, पहूंच, यमुना, छोटी नदियों और नालों के एक बड़े संजाल के साथ।

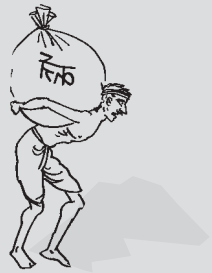

यमुना को छोड़कर यहां की केन, पहूंज, यसान, बेतवा और चम्बल नदियों का चरित्र ऐसा है कि वहां न तो जल संग्रह हो पाता है और न ही किसानों को कोई खास लाभ मिलता है।

मौजूदा हालात का ईमानदार विश्लेषण करें तो चित्रकूट, ललितपुर, झांसी, महोबा, जालौन, हमीरपुर, और बांदा देश के परिदन्य सौ जिलों में शामिल हो जायेंगे।

नहरें

लगभग 5000 किलोमीटर लंबी।

अन्य

नलकूप और स्थानीय जल निकाय।

बेहाल अन्नदाता

बुंदेलखण्ड का नाम आते ही एकबारगी स्वतंत्रता आंदोलन की याद आती है। झांसी की रानी से लगायत अनेक स्वतंत्रता सेनानियों की यह उर्वर भूमि इन दिनों भारी संकट में है। इस पठारी इलाके में किसानों की दशा अत्यंत सोचनीय है। प्राकृतिक आपदा, सरकारी उपेक्षा और दादू-दबंगों का शोषण, उत्पीड़न तथा अत्याचार इनकी नियति बन गयी है। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है वह दुःखद तो है ही हम सबके लिए चिन्ता का विषय भी है। विकास के सर्वमान्य सामान्य मानकों से भी बुंदेलखण्ड का इलाका अछूता है। यहां के लोगों का जीवन यहां की भौगोलिक स्थितियों से भी अधिक उबड़-खाबड़ हो गया है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले इस क्षेत्र में तकरीबन तीन-चौथाई आबादी खेती पर निर्भर है। इनमें अधिसंख्य सीमांत किसान या खेत मजदूर हैं। खेती भी वर्षा आधारित है। यमुना को छोड़कर यहां की केन, पहूंज, घसान, बेतवा और चम्बल नदियों का चरित्र ऐसा है कि वहां न तो जल संग्रह हो पाता है और न ही किसानों को कोई खास लाभ मिलता है। ऊपर से ये नदियां अपने तेज प्रवाह में किसानों की खड़ी फसल बहा ले जाती हैं। नतीजतन लाख जतन से की गयी खेती बर्बाद हो जाती है और किसान कर्ज तले धंसने के लिए मजबूर हो जाते हैं। निम्न फसल उत्पादकता और

कल-कारखानों से अछूता इस क्षेत्र की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाएं लगातार कमजोर से कमजोरतर होती जा रही हैं। अनिश्चित बरसात, उच्च मृदाक्षरण और बढ़ते बीहड़ यहां के किसानों का वर्तमान और भविष्य दोनों बन गया है। पूरा इलाका परिस्थितिकी अधः पतन से बुरी तरह प्रभावित है। उत्खनन और अंधाधुंध पेंड़ों की कटाई से पूरा क्षेत्र अनाच्छादित होता जा रहा है। उपजाऊ जमीन को कहीं प्रकृति तो कहीं स्वयं आदमी काट रहे हैं। परम्परागत जल स्रोतों का ह्रास हो रहा है। तालाब, कुएं और प्राकृतिक नाले या तो पाटे जा चुके हैं या उथले हो रहे हैं। भूगर्भीय जलस्तर में लगातार गिरावट आ रही है।

सच तो यह है कि बुंदेलखण्ड के सात जिले उत्तर प्रदेश के सबसे समस्याग्रस्त जिलों में शुमार हैं। अगर मौजूदा हालात का ईमानदार विश्लेषण करें तो चित्रकूट, ललितपुर, झांसी, महोबा, जालौन, हमीरपुर, और बांदा देश के परिदन्य सौ जिलों में शामिल हो जायेंगे। पिछले तीन दशकों से सूखा और बाढ़ यहां के किसानों को प्राकृतिक विपदा के रूप में मिले हैं। औद्योगिक सभ्यता के उदय से पहले जो हमें पानी मिलता था, वह प्राकृतिक स्रोतों की दया से ही मिलता था और वह भी निःशुल्क। लेकिन लगातार सूखा एक ऐसा प्राकृति कोप बनाकर यहां के किसानों के सम्मुख खड़ा है, जिसकी विभीषिका बहुत ही खतरनाक रूप लेता जा रहा है। पठारी इलाका होने के कारण निजी खर्चे पर पानी निकालना बहुत ही महंगा है और यहां के अधिसंख्य किसानों के बूते की बात भी नहीं है।

यहां आजीविका के सभी स्रोतों पर सामंतवादी शक्तियों का एकाधिकार है। समुदाय का वह बड़ा वर्ग जो जन्म से ही अतिगरीबों की श्रेणी में आता है, वह माफियाओं और जमींदारी प्रथा के इन पोषकों के शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार का शिकार है। यहां के

बुंदेलखण्ड में चार तरह की मिट्टियां पाई जाती हैं। भर, कहर, परवा और शकर। इनको क्षेत्रीयता के हिसाब से अलग-अलग नामों से भी पुकारा जाता है। मैदानी इलाकों की मिट्टी अत्यधिक उपजाऊ है।

बुंदेलखंड में आमतौर पर बड़े किसान ही कृषि के नये यंत्रों और संसाधनों से लैस हैं। छोटे किसानों की निर्भरता अब इनके ऊपर बढ़ गयी है, जो कतई चिन्ताजनक है।

परिदन्य श्रेणी में आने वाले जाति समूहों की कोई सुनने वाला नहीं है। सरकारी अमला पूरी तरह से इन सामर्थ्यवान लोगों के इशारे पर चलता है। लिहाजा गरीब-गुरबों का उत्पीड़न बदस्तूर जारी है। छोटे-छोटे और फर्जी कर्ज के नाम पर उनकी बहू-बेटियों को गिरवी रख लेना यहां के दादू-दबंगों की फितरत है। बैंक अधिकारियों और दलालों की दुरभिसंधि से आए दिन किसी गरीब के नाम पर फर्जी ऋण की निकासी होती है। बैंक कमी और दलाल उन पैसों का बंदरबांट करते हैं और वसूली होती है उन गरीबों से। अगर सच को सच रहने दिया जाये तो यह तय है कि मौजूदा हालात में अगर कोई किसान बैंक का बकाएदार है तो उसके बूते की बात नहीं है कि वह बैंक का कर्जपाट सके। जिस खेती के लिए उसने कर्ज लिया वह या तो पहाड़ी नदियों की भेंट चढ़ गयी या सूखे की मार से स्वाहा हो गयी। जब उसके घर में एक तिनका भी नहीं पहुंचा, तो वह क्या बेंचकर बैंक का कर्ज चुकाएगा। जब वसूली की मार पड़ेगी तो वह अंतिम तौर पर जिस ओर उन्मुख होगा, उसको बताना अब जरूरी नहीं रह गया है।

वैसे बुंदेलखण्ड के सामाजिक ढांचे, आर्थिक हालात, खेती और जलवायु पर संक्षिप्त नजर डालने से यहां के लोगों खासतौर से किसानों बारे में एक स्पष्ट सोंच बनेगी, क्योकि यहां की कुल आबादी के 72 फीसदी लोग या तो किसान हैं या कृषि संबंधी कार्यों से जुड़े हुए हैं।

कृषि

मिट्टी

बुंदेलखण्ड में चार तरह की मिट्टियां पाई जाती हैं। भर, कहर, परवा और शकर। इनको क्षेत्रीयता के हिसाब से अलग-अलग नामों से भी पुकारा जाता है। मैदानी इलाकों की मिट्टी अत्यधिक उपजाऊ है। मिट्टी इतनी कमाल की होती है कि इस क्षेत्र का गरीब किसान भी यदि भीषण सूखा का प्रकोप न हो तो नामात्र की सिंचाई से भी ज्वार, चना और गेंहू पैदा कर लेते हैं। लेकिन गरीबों के पास कम खेती लायक जमीन होने के कारण वे मात्र तीन से छह महीनें के लिए ही खाद्यान्न उत्पन्न कर पाते हैं। नदियों और हवाओं से उत्पन्न हुई जलोढ़ मिट्टी, गाद, सिल्ट और रेत वस्तुतः यमुना और उसकी सहायक नदियों के किनारे हुए सबसे नया भौमिकी जमाव है। टोपोग्राफी सामान्यतया उबड़-खाबड़, असमतल है। कुल प्रतिवेदित भूमि को देखें तो इनमें 7.75 प्रतिशत वन क्षेत्र, 4.01 प्रतिशत बंजर भूमि, 5.19 प्रतिशत खेती योग्य बेकार भूमि, 18 प्रतिशत चारागाह और 6.67 प्रतिशत विशुद्ध परती भूमि है।

यहां के किसान आज भी परंपरागत खेती करते हैं। लेकिन कृषि के अत्याधुनिक संसाधन के आ जाने से इसमें थोड़ा-बहुत बदलाव जरूर आया है। अब सीमांत और लघु किसान भी हल से खेती करना मुनासिब नहीं समझते। बैलों की संख्या कम होती जा रही है। जानवरों की कमी से कम्पोस्ट खाद का इस्तेमाल भी स्वाभाविक रूप से घटता जा रहा है। अभी इस इलाके में जैविक खेती का सूत्रपात नहीं हुआ है। आमतौर पर बड़े किसान ही कृषि के नये यंत्रों और संसाधनों से लैस हैं। छोटे किसानों की निर्भरता अब इनके ऊपर बढ़ गयी है, जो कतई चिन्ताजनक है।

टेल तक पानी पहुंचाने का सरकारी दावा हर साल खोखला साबित होता है। यहां के नहरों की प्रमुख जलस्रोत यहां की नदियां हैं, जो गर्मी आते-आते या तो सूख जाती

जिन गांवों और झुग्गियों में पीने के लिए साफ पानी नहीं पहुंचा, स्कूल नहीं पहुंचे और अस्पताल नहीं पहुंचा वहां वैश्वीकरण ने बाजार को पहुंचा दिया। इस बाजार में क्रीम, पावडर, टूथपेस्ट, पेप्सी, कोका कोला और देसी पाउच सब कुछ उपलब्ध है।

जलवायु

बुंदेलखण्ड की जलवायु अर्धशुष्क है। गर्मी में सूखा या सूखे जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। बरसात के मौसम में नदियों के किनारे वाले इलाके भीषण बाढ़ की चपेट में आ जाते हैं। यहां जुलाई और अगस्त महीने में सर्वाधिक वर्षा रिकार्ड की जाती है। हालांकि परिस्थिति की असंतुलन से यहां भी वर्षा अनियंत्रित होने लगी है। जल वृष्टि में लगातार गिरावट दर्ज की जा रही है। चित्रकूट जिले में वर्ष 1999-2000 में 912 मिमी और 2000-2001 में 1016 मिमी वर्षा रिकार्ड की गयी थी।

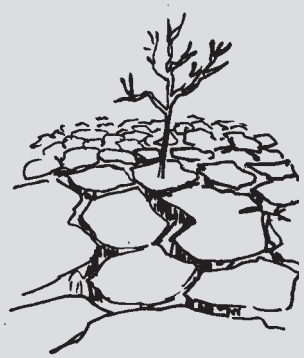

सिंचाई

यहां की अधिकांश खेती आज भी भगवान भरोसे है। वैसे भी पिछले दो-तीन दशकों से हर साल यहां सूखा पड़ रहा है। खेती योग्य जमीन आधे से अधिक असिंचित है। सिंचित क्षेत्र कुल 41 प्रतिशत है। इनमें नहरों से 50 प्रतिशत, सरकारी नलकूप से 4 प्रतिशत, निजी सिंचाई के संसाधनों से 7 प्रतिशत और अन्य जल स्रोतों से 41 प्रतिशत खेतों की सिंचाई होती है। वैसे तो बुंदेलखण्ड में 522.59 किलोमीटर लंबी नहरों का संजाल है, लेकिन यह संजाल किसानों के लिए छलावा मात्र है। टेल तक पानी पहुंचाने का सरकारी दावा हर साल खोखला साबित होता है। यहां के नहरों की प्रमुख जलस्रोत यहां की नदियां हैं, जो गर्मी आते-आते या तो सूख जाती

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सेवा संस्थान

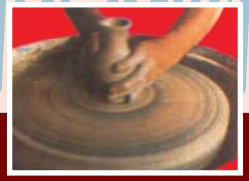

'अन्त्योदय' हमारा दर्शन है। 'रचना' और 'संघर्ष' हमारे कार्य आधार हैं। लोकनायक राम ने जिन कोल आदिवासी जनों के साथ अपने वनवासी जीवन के साढ़े ग्यारह वर्ष बिताये थे। उन्ही कोल आदिवासी समूह को अपना अराध्य मानकर संस्थान ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की है।...

अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान, उ0प्र0 के बारे में...

अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान लोक कल्याणकारी, अराजनैतिक एक स्वयं सेवी संस्था है। वर्ष 1970 से समाज रचना के पुनीत कार्य में सक्रिय है। `अन्त्योदय' हमारा दर्शन है। `रचना' और `संघर्ष' हमारे कार्य आधार हैं। लोकनायक राम ने जिन कोल आदिवासी जनों के साथ अपने वनवासी जीवन के साढ़े ग्यारह वर्ष बिताये थे; उन्ही कोल आदिवासी समूह को अपना अराध्य मानकर संस्थान ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की है।... वनवासी, आदिवासी कोल ही क्यों ?... क्योंकि यह समूह सदियों से दासता एवं बंधुआपन का जीवन जी रहा था। मानवाधिकारों की इस क्षेत्र में धज्जियाँ उड़ाई जा रही थी। मातृशक्ति गिरवी थी। सम्मान, स्वाभिमान से शून्य कोल समुदाय जीवन जीने को अभिशप्त था। घोर ग़रीबी, शोषण, अत्याचार का नंगानाच था। इस दुखद दृश्यों के विरूद्ध कार्य करने का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ। रचना तथा संघर्ष का मार्ग अपनाकर हमारे ध्येयवादी, साहसी साथी आगे बढ़े और उन्हीं के परिश्रम के परिणाम स्वरूप आज चित्रकूट के पठारी क्षेत्र का आदिवासी कोल समुदाय सम्मान, स्वाभिमान का जीवन पा सका है। जल, जंगल ज़मीन तथा जन के तमाम मुद्दों पर संस्थान ने ऐतिहासिक हस्ताक्षेप किया है। परिणाम स्वरूप समाधान मिला है। शिक्षा, चेतना के स्वर गूँजने लगे हैं। ग़रीब हितों पर चोट करने वालों को उत्तर मिलने लगा है। आदिवासी कोल कार्यकर्ताओं एवं महिलाओं का नेतृत्व आगे आया है। अपनी लड़ाई अब वे स्वयं अपनी अनुवाई में लड़ रहे हैं। जिस क्षेत्र से संस्थान का कार्य प्रारम्भ हुआ था, अब वहाँ संस्थान के विकल्प स्थापित हो चुके हैं, हो रहे हैं। संस्थान के गर्भ से उत्पन्न अन्य कई संगठन अपनी गति से हस्ताक्षेप का कार्य कर रहे हैं।

अब बुन्देलखण्ड के सामंतवाद गढ़ों को तोड़ने की पहल प्रारंभ हुई है, टूट भी रहे हैं। चित्रकूट की सीमा से निकलकर संस्थान के अनुभवी तथा क्षमतावान साथी ललितपुर, झांसी, महोबा, हमीरपुर, बांदा, इलाहाबाद, रीवां, सोनभद्र, सरगुजा, सतना आदि में अन्त्योदय के लिए रचना एवं संघर्ष के मिशन के साथ अपनी सेवाएं समर्पित कर रहे हैं। संगठन, रचना, सेवा तथा संघर्ष क्षेत्र का गुणात्मक विस्तार हुआ है।

जलागम, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, शिक्षा, संगठन, जनपैरवी, सामाजिक सौहार्द जल, जंगल, ज़मीन, महिला सशक्तिकरण तथा जन एवं जानवरों से सम्बन्धित प्रकल्प संस्थान द्वारा संचालित हैं।

लोक संस्कृति उन्नयन, मातृशक्ति सशक्तिकरण, मानवाधिकार, सामाजिक सुरक्षा, आजीविका संवर्द्धन, प्रकृति संरक्षण एवं संवर्द्धन, युवा पीढ़ी को प्रोत्साहन, जनाधिकारों हेतु पहल, शिक्षा, स्वास्थ्य, परंपरागत श्रेष्ठ रीतियों, उत्सवों, त्योहारों एवं अन्य पर्वो का सम्मान आदि हमारी चिंताए हैं। पारदर्शिता, जन सहभागिता, नागर समाज संगठनों में शुचिता, ईमानदारी, गुणवत्ता एवं आपसी विश्वास हमारे मूल्य हैं। रूढ़ियों, कुरीतियों, जातिप्रथा, दहेज-दानव, ऊँच-नीच, अस्पृश्यता का उन्मूलन हमारे प्रयास में शामिल हैं। अनेक व्यावाहारिक सुखद उदाहरण भी साथ-साथ चल रहे हैं।

सौ से अधिक पेयजल कूप, 30 तालाब, 35 चेकडैम, सैकड़ो एकड़ में सघन वनीकरण, वनौषधि उद्यान, औषधि निर्माण, वस्त्र निर्माण, भूमि सुधार आदि जनोपयोगी कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं। लगभग 5 हज़ार हेक्टेयर में जल संरक्षण के कार्यो द्वारा उत्पादन एवं आजीविका संवर्द्धन विकसित कर हज़ारों परिवारों की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में संस्थान सफल रहा है। लगभग 5 हज़ार परिवारों को 12 हज़ार एकड़ हेक्टेयर में भूमि हकदारी सुनिश्चित करवाने में संस्थान सफल रहा है। वर्तमान में साढ़े बारह हज़ार हेक्टेयर में जलागम कार्यक्रम संचालित है। कार्यकर्ता एवं व्यक्ति निर्माण का कार्य अहर्निश अबाध गति से अदृश्य रीति से चल रहा है। कार्यकर्ताओं का व्यावाहारिक ज्ञान, अनुभव उनके कार्यक्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रहा है।

आह्वान : उपरोक्त अकिंचन प्रयास के अवलोकनार्थ आप सादर आमंत्रित हैं ?... क्योंकि पढ़ना, सुनना उतना प्रभावकारी नहीं होता जितना प्रत्यक्ष देखकर विश्वास स्थापित होता है। `अन्त्योदय' के इस पुनीत महायज्ञ में आपका सहयोग, समन्वय एवं सहभागिता आपको और हमें धन्यता प्रदान करेगी। कृपया विचार करें, सहयोग करें। आगे आवें। समाज की ग़रीबी, बेकारी, लाचारी, बेबसी, भुखमरी, चुप्पी संस्कृति, भ्रष्टाचार, शोषण, उत्पीड़न, बंधुआपन, जन-जड़ता तोड़कर राष्ट्र को आगे बढ़ाने की समिधा का अंग बने, यश की प्राप्ति होगी।

● अधिक जानकारी के लिए हमारी वेबसाइट- **www.absss.org.in** देखें।

अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान

भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, पोस्ट-सीतापुर, चित्रकूट-210204 (उ.प्र.)

फोन : 05198-224332 E-mail : info@absss.org.in, वेब : www.absss.org.in